मेरी फजीहत

लेखक

मजदूर का दिल, प्रेम
का पुजारी—अछूत
के पत्र आदि
पुस्तकों के
रचयिता

श्रीयुत व्यथित हृदय

प्रथम संस्करण	सन् १९३८	मूल्य ।।।)

प्रकाशक—
चौधरी एण्ड सन्स
पब्लिशर्स एण्ड बुकसेलर्स
बनारस सिटी।

मुद्रक—
मथुरा प्रसाद
जॉब प्रेस
कर्णघंटा
बनारस।

मेरी फ़जीहत

मेरी सुधारानी ! बाह कुछ न पूछिये, मेरे लिये बिल्कुल चुम्बक लोहे का सा काम करती हैं। दिन हो या रात, धूप हो या छाँह, रेगिस्तान हो या नखलिस्तान, मैं सदैव उनकी ओर कल्हुये बैल की तरह खिंचा जाता हूँ। मैं जिस तरह उनकी ओर आकर्षित होता हूँ; उसकी गति की उपमा के लिये कदाचित् संसार में कोई दूसरी मिसाल ही नहीं ! आप आश्चर्य करेंगे, मेरी गति ठीक उसी के समान है, जिस प्रकार अमेरिकन मोटरकार में रस्सी से बँधी हुई कोई चीज़ ! यदि आप कभी इस अनोखे आकर्षणत्व को देख लें तो इसमें

सन्देह नहीं, कि आप भी अपनी श्रीमती जी के विलायती टामी बन जायँ।

मैं कई महीनों से बेकार था। नौकरी-चाकरी सब छूट गई थी। घर में कुछ कारूँ का खज़ाना तो था नहीं, कि उससे पेट-देवता की पूजा करता। कुछ दिनों तक तो काम चलाया, लेकिन जब गाड़ी पूरी तरह कीचड़ में फँस गई, तब लगा एक दिन सुधारानी के सामने सिसक-सिसक कर रोने। जब मेरी आँखों से घड़ों आँसू ज़मीन पर गिर पड़ा, तब सुधारानी ने धीरे से अपना आँचल उठाया। और उससे मेरी आँखों को पोंछते हुये उन्होंने कहा—क्यों, रोते क्यों हो? ले जाओ मेरे पैर के छल्ले और इसे बेंचकर किसी दूसरे शहर में जाकर नौकरी खोजो।

मैंने सोचा, सुधारानी इस समय मुझ पर अधिक कृपालु हैं। उनकी बात पूरी भी न हो पाई थी, कि मैंने फिर रोने के स्वर में कहा, और तुम? तुम्हें घर में अकेली छोड़कर तो मुझसे परदेश नहीं जाया जाता। क्या तुम नहीं जानती, कि मैं तुम्हारा अनन्य प्रेमी हूँ।

मैंने सोचा था, मेरी इस बात को सुनकर सुधारानी मुझ पर बहुत प्रसन्न होंगी, और वे अवश्य मुझे बच्चों की भाँति खींचकर अपनी गोद में बैठा लेंगी। किन्तु अफ़सोस! मेरी इस बात ने उनके हृदय में होलिका जला दी। उन्होंने अंगद

महाराज की तरह ज़मीन पर अपना पैर पटक कर कहा, तो मुझे भाड़ में झोंक दो। तुम्हें यह कहते हुये शर्म नहीं आती। घर बैठे-बैठे दीमकों की तरह मेरे माँ-बाप के दिये हुये जेवर चट कर गये, और अभी तक घर से बाहर निकलने का नाम नहीं लेते। जान पड़ता है, अब शरीर में मांस भी न रहने दोगे।

क़सम ख़ुदा की, उस वक़्त सुधारानी की ज़ुबान ऐसी चल रही थी, जैसे कतरनी। मैंने अपने दिल में सोचा, न हुई दर्ज़ी की दूकान, नहीं तो आज यहाँ कोड़ियों कुर्ते और कोटों के काट अपने आप कट जाते। सच कहता हूँ, सुधारानी की चलती हुई उस ज़ुबान को देखकर मैं उनसे पूरा सवा दो हाथ पीछे हट गया।

मैंने सोचा, कहीं यह बेअंकुश की कतरनी मुझे बारीक और सुडौल न बनाने लगे।

सुधारानी की उस तेज़ कतरनी को देख कर मैं कुछ डरा तो ज़रूर, लेकिन साथ ही मेरी नसों का पानी कुछ गरम भी हो उठा। आख़िर ठहरा तो मर्द ही। नसों में गरमाहट आ जाने पर हिम्मते-मर्दां क्या नहीं कर दिखाते ? मैं झट से अपनी जगह से उठा, और पायजामे की कन्दरा में अपने पैरों को डालते हुये कहा, लीजिये जा रहा हूँ। अब नौकरी खोज करके ही घर लौटूँगा।

मैं कहने को तो कह गया, लेकिन घर से निकलने की मेरी हिम्मत न होती थी। इसी लिये मैंने एक घंटे में पायाजामा पहना, और सवा घंटे में कोट और कुरता। पूरे बीस मिनट तो खूँटी से टोपी उतारने में लग गये थे। लेकिन सुधारानी जैसे नींद में सो रही हों। जैसे उन्हें किसी ने कील-कांटे से ज़मीन में जड़ दिया हो। वे अपने स्थान से न हटीं, न हटीं !! जब मैं डेहरी लाँघ गया, और सुधारानी अपनी जगह से न हटीं, तब मुझे भी क्रोध आ गया और मैंने चिढ़ कर कहा, अच्छा मैं जाता हूँ, मगर आज से तुम अपने को विधवा समझ लो !!

मैं घर से बाहर निकल गया। कुछ देर सड़क पर खड़ा रहा, और कुछ देर चौरास्ते पर। सोचा, सुधारानी अवश्य मुझे मनाने के लिये घर से दौड़ी आती होंगी। मगर शाम हो गई, और सुधारानी के दर्शन न हुये। जब सुधारानी मुझे मनाने के लिये न आईं, तब मैं मन ही मन अपनी मृत्यु के लिये भगवान से प्रार्थना करने लगा। उस समय मैं सुधारानी का बिलकुल प्रतिद्वन्द्वी बन गया था। यदि मेरा वश चलता तो मैं उसी समय सुधारानी को विधवा बना देता। लेकिन लाख प्रार्थना करने पर भी मुझे ईश्वर ने मृत्यु का वरदान न दिया। जान पड़ता है, उस समय भगवान भी सुधारानी की सेवा कातरनी से भयभीत होकर उनकी ओर हो गये थे।

मैं रात भर कहाँ रहा, किस पेड़ के नीचे सोया रहा, यह मुझे स्वयं नहीं मालूम। लेकिन इतना मैं अवश्य जानता हूँ, कि रात में जब किसी चीज़ का खटका होता था, तब मुझे सुधारानी के आने का सन्देह हो जाता था। उस रात में यह सन्देह ही मेरा अनन्य साथी बना हुआ था। यदि यह न होता तो उस अँधेरी रात में अकेले मेरी न जाने कौन सी दुर्गति होती!

रात बीती, सवेरा हुआ। मैंने सोचा, चलूँ स्टेशन पर और सदा के लिये यहाँ से उड़न्छू हो जाऊँ। मगर सुधारानी के प्रति दिल में बसे हुये प्रेम ने मुझे पिलपिला बना दिया। परदेश जाने को कौन कहे, स्टेशन की ओर देखने तक की मेरी हिम्मत न हुई। मैं वहाँ से उल्टे पाँव घर की ओर लौट पड़ा। रास्ते में मैंने सोचा, अब सुधारानी का ग़ुस्सा ज़रूर उतर गया होगा, और वे मुझे देखते ही ज़रूर एक पतिव्रता स्त्री की भाँति मेरी आरती उतारने लगेंगी। किन्तु अफ़सोस, दरवाज़े पर पहुँचा, तो देखा ताले बन्द थे।

काटो तो ख़ून नहीं! शरीर क्या हो गया, मानों बर्फ़ का ढेर। मगर पूर्व जन्म के पुण्यों का फल! सहसा एक दूसरी ओर से सूरज की एक किरण फूट उठी। आप आश्चर्य न करें, वह थी तो मेरे घर की महरिनि, लेकिन उस समय वह मुझे सूरज की किरण से कम सुखदायिनी न प्रतीत हुई। उसने

कहा, बाबू जी बहू जी तो आज सवेरे की गाड़ी से अपने मैके चली गईं। कल शाम को उनका भाई आया था और उन्हें लिवा ले गया।

सचमुच दुनिया में कोई किसी की परीशानी नहीं जानता। कम्बख्त ससुराल वाले तो परीशानी अता करने में यमराज से किसी भाँति कम नहीं होते। आप ही फ़ैसला कर दें। तराज़ू के एक पलड़े पर मेरे दिल को रखिये, और दूसरी ओर सुधारानी के भाई जी को। दोनों में कितना अन्तर है; कितना फ़र्क है! ग़ुस्सा तो ऐसा लगा कि सिर पटक दूँ और दीवाल टूट जाय। लेकिन सुधारानी के दर्शन के लिये अपने अस्तित्व को स्थिर रखना बहुत आवश्यक था। इसलिये उस समय मरने की लाख इच्छा होने पर भी मैंने अपने को सुरक्षित रक्खा।

मैंने अपने को सुरक्षित तो रक्खा, लेकिन हृदय में एक आँधी सी चलने लगी। वह आँधी इतनी भयङ्कर थी, कि मुझ पर बिना दया-मया किये हुये मुझे स्टेशन पर खींच ले गई। और मैं उसी की कृपा से दूसरी गाड़ी से ससुर जी के घर आ पहुँचा।

ससुर जी का घर सामने दिखाई दे रहा था। मैंने सोचा, अब तो अवश्य सुधारानी के दर्शन होंगे। मगर अफ़सोस! सुधारानी का छोटा भाई रास्ते ही में मिला। उसने कहा, बहन

जी, अम्मा जी के साथ अभी अभी मामा के घर गई हैं। शायद अभी स्टेशन ही पर हों।

मुझे तो काठ सा मार गया। पैर के नीचे की ज़मीन जैसे नीचे धँसने सी लगी। मैं उल्टे ही पाँव वहाँ से स्टेशन को लौट पड़ा। स्टेशन पर पहुँचते ही मैंने देखा, कि गाड़ी छूट गई है और सुधारानी खिड़की से मुँह निकाल कर मेरी ओर देख रही हैं।

मुझसे न रहा गया। मैं बड़े ज़ोर से चिल्ला उठा, सुधारानी-सुधारानी !! सुधारानी बग़ल की चारपाई पर सोई थीं। उन्होंने मुझे जगा कर कहा, क्या स्वप्न देख रहे हो ?

बचवा का मुंडन

कार के दिन थे। मुझे ठीक याद तो नहीं, किन्तु शायद शुक्ल पक्ष की चढ़ाई थी, वही जिसका आप लोग नवरात्र के नाम से महाजाप किया करते हैं। दिन ढल रहा था। सूर्य भगवान आकाश की खिड़की से अपना लाल-लाल मुँह निकाल कर हँस रहे थे। सुधारानी अपने आँगन में खड़ी होकर बड़ी तल्लीनता से उस छवि का दर्शन कर रही थीं। गोद में था उनका छोटा सा 'बचवा'। उसकी उम्र तो अभी दो ही साल की

थी, किन्तु वह आकाश की सतरंगी आभा को देख-देख कर ऐसी किलकारियाँ मार रहा था, मानो कोई पढ़ाया हुआ सुग्गा हो !!

सहसा सुधारनी का ध्यान भंग हुआ। कदाचित् उन के तेज़ कानों ने मेरे पैरों की ध्वनि सुन ली हों। उन्होंने आँखें घुमा कर देखा। मुझे देखते ही तो न जाने क्यों, उनको खुशी महारानी के हार्ट फेल हो गये। उन्होंने आहत सिंहिनी की भांति तड़प कर एकबारगी कहना शुरू कर दिया :—'न जाने ये किस आफ़िस में काम करते हैं। बड़ो बड़ी तनख्वाह वाले, मैं देखती हूँ, चार बजे के पहले ही अपने घर लौट आते हैं, मगर इन्हें छः बजे के पहले आने की फ़ुरसत ही नहीं मिलती। आवें कैसे, जब बाल-बच्चों की की फ़िक्र हो तब न'

क्वार के दिन थे ही, गर्मी बड़े ज़ोरों से पड़ रही थी। कुरता साफ़ पानी में स्नान कर चुका था। मैं राम राम करता हुआ चारपाई की गोद में जा पड़ा और लगा मन में देवी-देवताओं को याद करने। लाख मनौतियाँ की, लाख भेड़े और बकरे चढ़ाने के लिये कहा, किन्तु किसी की हिम्मत न हुई, कि कोई अपने आर्डीनेन्स की मशीनगन ले जाकर सुधारानी के मुँह के सामने भिड़ा दे। कम्बख्त क़िस्मत ! ज्यों-ज्यों मैं अपनी मनौतियों की घोड़ी तेज दौड़ाता था, त्यों त्यों सुधारानी कपास की ओढनी की तरह और भी अधिक तेज़ होती जाती थीं।

आखिर जब मुझसे न रहा गया, तब मैं भी ज़ोर ज़ोर से हनुमान चालीसा का स्तोत्र करने लगा।

जीता रहे हनुमान चालीसा बनाने वाले का बेटा ! जनाब स्तोत्र के आरम्भ काल में ही सुधारानी ऐसी धीमी पड़ गईं, कि कुछ पूछिये नहीं। मध्य काल में तो वे स्वयं उस स्तोत्र को सुनते सुनते ऊब गईं। उन्होंने कहा, अरे चुप भी रहोगे या यों ही जान खा डालोगे। दिन भर पर घर आये भी तो, दुख-सुख पूछने को कौन कहे, एक दूसरा ही पचड़ा छेड़ दिया !!

कहने की आवश्यकता नहीं, कि विजय का सब माल-असबाब मेरे हाथ लग रहा था। इसलिये मैंने चुप हो जाना ही अपने लिये अधिक श्रेयस्कर समझा। क्योंकि कौन जाने, कुक्षती के महल में निवास करने वाले चंचल ग्रह कब फिर नाराज़ हो जाँय, और सुधारानी ज्वालामुखी पहाड़ बनकर फिर आग, लावा, राख उगलने लगें ! फिर तो लेने के देने ही पड़ जायेंगे। बरक़रार रहे मेरे हृदय की चतुराई ! उसने मुझे शान्त कर दिया, किन्तु मैं अपने मन ही मन सोचने लगा, यह विचित्र न्यायालय है। जबरा मारै, रोवे न दे, कदाचित् यह लोकोक्ति ऐसे ही न्यायालयों के अधिपतियों के लिये बनाई गई है।

मैं चुप होकर सुधारानी की ओर देखने लगा। उस समय मेरे ओठों पर हँसी थी। अंग-अंग से जैसे प्रसन्नता का सावन झर रहा था। सुधारानी से यह बात छिपी न रही। उन्होंने मेरी

चारपाई पर बैठते हुये कहा, बस तुम्हें तो हँसना ही सूझता है। यहाँ आज दोपहर से जान ऐसी संकट में पड़ी है, कि कुछ कहते नहीं बनती। मगर तुम्हें इससे क्या मतलब ? दिन भर के बाद जब आये भी तब हनुमान चालीसा का महास्तोत्र शुरू कर दिया और जब उससे छुट्टी मिली तब फिर क्या ? पूरे रसिया बन गए।

मुझे तो जैसे काठ मार गया। मैंने सुधारानी की ओर देखा। सुधारानी की आँखों में करुणा थी, दुख था। इतना ही नहीं, मेरे देखते ही देखते उनकी आँखों से झरने भी बह चले। मैंने सोचा, जरूर कोई न कोई गहरी बात है। मेरे दोनों हाथ फौरन आगे बढ़े। एक ने सुधारानी की आंखों के आँसू पोंछ दिये, और दूसरे ने उनके हाथ को पकड़ कर उन्हें सान्त्वना दी, रोती क्यों हो ? मैं तो मौजूद ही हूँ।

अब मेरे सामने यह दूसरी समस्या आकर खड़ी हो गई। मैं समझता हूँ, बड़ी-बड़ी लड़ाइयों में विजय प्राप्त कर लेना आसान है, किन्तु इस समस्या को सुलझाकर समझ लेना बहुत कठिन। मेरा तो खाना-पीना सब कुछ भूल गया। प्यास हुम दबाकर ऐसी भगी, कि कुछ पूछिये नहीं ! सुधारानी को रोने के सिवाय और कुछ सूझता ही नहीं था।

आखिर बहुत देर के बाद जब उनकी आँखें रोते-रोते थक गईं, तब उन्होंने मीठी झिड़कियां सुनाते हुये कहा, तुम्हें मेरे रोने

से क्या मतलब ? आज दोपहर को मैंने जो स्वप्न देखा है, उससे अब तक मेरी छाती धड़क रही है । भगवान जाने, मेरी इस निगोड़ी क़िस्मत में क्या लिखा है ? दिन रात देवी-देवताओं को मनाते ही बीतता है, किन्तु अपशकुनों से पीछा छूटता ही नहीं ।

मैं अपनी सुधारानी की प्रकृति को अच्छी तरह जानता हूँ । वे कितनी धार्मिक और कितनी पुजारिनि हैं ! कुछ न पूछिये, उन्हें मिट्टी के पुराने ढूहों में भी भगवान नजर आते हैं । इसलिये सुधारानी की इस बात को सुनकर मैंने समझ लिया, कि मेरे सिर पर आकाश से बरसाती बिजली गिरने वाली है । किन्तु उस समय शान्त होकर बैठ रहना ठीक न था । यदि ऐसा होता तो फिर समझ लीजिये, मुझे राष्ट्र सङ्घ की तरह गुत्थियाँ सुलझानी पड़ जातीं । इसलिये मैंने देर न लगाकर अपना मुँह सुधारानी के मुंह की ओर फेर दिया, और उनसे बड़ी ही रहमदिली के साथ पूछा, आखिर हुआ क्या ? कुछ सुने तो !!

सुधारानी की आंखें फिर विक्टोरिया प्रपात बन गईं और मैंने फिर आरजू-मिन्नत करनी शुरू कर दी । न जाने कहां से उनके दिमाग़ में इतना खारापानी जमा हो गया था । जान पड़ता है, खुदा ने बड़े-बड़े समुद्रों की उद्‌गम भूमि स्त्रियों के दिमाग़ों ही को बनाया है । इसीलिये तो मेरी सुधारानी की

पलकों में हज़ारों झरने और सागर भरे हुये हैं। ख़ैर बड़ी देर के बाद उन्होंने रोते रोते कहा :—आज दोपहर में मैं सो रही थी, केवल एक मामूली झपकी लगी थी। अचानक एक स्त्री मेरे पास आई। उसके बाल खुले थे। उसके हाथ में एक तेज छुरा था। उसने मुझे छुरा दिखाते हुये कहा, क्यों रे तुझे याद है, या नहीं ? तूने मेरे दरबार में अपने लड़के का बाल उतरवाने के लिये कहा था। देख, मैं तुझे होशियार किये देती हूँ।"

सुधारानी अपनी बात ख़तम करके बिलख-बिलख कर रोने लगीं। यदि उस समय कोई अपरिचित उन्हें देख लेता तो वह बिना कुछ कहे ही जान जाता कि अवश्य आज इनके मस्तक का सिन्दूर पुछ गया है। मैंने उन्हें मनाया और समझाया, पर वे मानने क्यों लगी ? जब किसी तरह उनके अश्रु-समुद्र का ज्वार भाटा न रुका तब मैंने उनसे पूछा, आख़िर तुम चाहती क्या हो ?

मेरे इस प्रश्न से तो वे ग्रामोफोन के रिकार्ड की तरह बज उठीं। उन्होंने मुझे घूरते हुये कहा, तुम्हारी अक़्ल पर पत्थर पड़े। अब भी पूछते हो, कि मैं चाहती क्या हूँ ? हाय भगवान, मैं पैदा होते ही मर क्यों न गई ? इनके कानों में कोई आकर ज़ोर से यह कह क्यों नहीं देता, कि देवी जी का हुक्म है, नवरात्र में देवी के दरबार में बच्चा के सिर का बाल उतरवा दो।

वाह ? इसीलिये इतनी लम्बी-चौड़ी भूमिका—मैंने कुछ जोश में आकर कहा—चलकर उतरवा न दो, देवी के दरबार में लड़के के सिर का बाल। बाल उतरवाने में लगता ही क्या है ?

लगता ही क्या है ? सुधारानी ने तैश में आकर जवाब दिया—यदि इतनी ही समझ होती तो आज मुझे अपनी क़िस्मत पर आंसू क्यों बहाने पड़ते ? बाल उतरवाने में दो सौ रुपये से एक पाई कम न लगेगी। सौ रुपये तो सोने के अस्तुरे ही बनवाने में लग जायेंगे, भाई-बिरादरों को कुछ खिलाना-पिलाना भी तो पड़ेगा। दान-दक्षिणा भी दोगे या यों ही मुँह छिपा कर चले आवोगे।

दो सौ रुपये का नाम सुनकर तो मेरे पायजामे की डोरी ढीली हो गई। किन्तु सुधारानी का आर्डीनेन्स ! उसके सामने सिर झुकाना ही पड़ा। पास में रुपये तो थे नहीं, और नवरात्र शुरू हो गया था। सिर के ऊपर दूसरी ओर सुधारानी का आर्डीनेन्स दम नहीं लेने देता था। ख़ैर, एक महाजन से इन्दुल तलब रुक्का लिखकर दो सौ उधार लिये। इन दो सौ रुपयों का उधार लेना मुझे उतना दुखदाई न मालूम हुआ जितना अपने सेठ जी की दूकान से सात दिन की छुट्टी। सेठ जी ने पहले तो छुट्टी देने में आना-कानी की, किन्तु जब सुधारानी ने सेठ के घर जाकर सेठानी से कहा, तब तो सेठ जी को भी

बोलती बन्द हो गई। उन्होंने बिना कुछ कहे सुने ही मुझे एक सप्ताह की छुट्टी दे दी।

कहना न होगा, कि एक सप्ताह तक .खूब गुलछर्रे उड़े। बचवा का मुण्डन था न! ऐसा जान पड़ता था, मानों मैं कोई बहुत बड़ा राजा हूँ। हजारों ने दरवाजे पर आकर अंचल पसारे और हजारों ने बिना कुछ कहे सुने ही मुझे बड़े-बड़े आशीर्वाद दिये। इसी महान आनन्द में मैं इतना तन्मय हुआ, कि पन्द्रह दिन तक सेठ जी की दूकान पर ही न गया। सोलहवें दिन जब मैं दूकान जाने के लिये तैयार होकर अपने घर से निकला, तब दरवाजे पर दारोगा साहब दो तीन पुलिस वालों के साथ मिले। उनसे मैं कुशल-मंगल पूछने ही वाला था, कि उन्होंने कहा, जनाब, सेठ जी की दूकान से दो हजार रुपये गायब हो गये हैं और उन्होंने इल्जाम आप पर लगाया है।

मैं कुछ कहने ही वाला था, कि दारोगा साहब के सिपाहियों ने आगे बढ़कर मेरे हाथों में हथकड़ी डाल दी। बातचीत की आवाज सुनकर सुधारानी भी अन्दर से निकल कर बाहर आईं। उनकी गोद में था, उनका बचवा। उसकी खोपड़ी ऐसी घुटी हुई थी, कि कुछ पूछिये नहीं। उसी घुटी हुई खोपड़ी को नमस्कार करके मैंने कहा, हाय रे बचवा का मुण्डन। सिपाही मुझे लेकर चलते बने, और सुधारानी टुकुर टुकुर ताकती ही रह गईं।

मैं ही उनका भगवान हूँ!

मेरी सुधारानी! वाह गजब की पुजारिनि हैं। जनाब, वे मार्ग में अपनी किस्मत पर आँसू बहाने वाले ढेलों को भी चीनी का शरबत पिलाती हैं। मन्दिर हो या मसजिद, मगर हो किसी देवता की दरगाह, बस फिर क्या? वे वहाँ अपनी गोद के मुनुवों की भी सुध भूलकर घन्टों इसतरह झुक कर

पड़ी रहती है, मानों किसी ने उनके सिर को लेई लगा कर ज़मीन से चिपका दिया हो। जिस दिन वे एकादशी का महाव्रत रहती हैं, उस दिन क्या मजाल, कि उनके गले के नीचे फलों का कोई टुकड़ा उतर जाय। फलों के टुकड़ों की तो बात क्या; उस दिन तो वे पानी का एक बूँद भी गले के नीचे नहीं उतारतीं। उनकी वह तपस्या यदि आप देखें तो आप का जी उन्हें मुक्ति का खिलौना देने के लिये तड़प उठे। किन्तु दादा दधीचि की हड्डियों से बना हुआ ईश्वर का हृदय! उसमें आज इतने दिनों के बाद भी करुणा का ताला न वहा, न वहा!

मगर इससे क्या? सुधारानी को ईश्वर की इस कठोरता की बिलकुल परवाह नहीं। वे अपने एकादशी के व्रत में कहीं से जरा भी नुक्स नही आने देतीं। नुक्स! यह आप क्या कह रहे हैं? उस दिन तो वे रोटी का नाम लेना भी महापाप समझती हैं। कुछ न पूछिये उस दिन की दशा! मुझे तो अपनी छट्ठी का दूध याद आ जाता है। सारा दिन बीत जाता है। किन्तु फिर भी रोटी के टुकड़े से भेंट नहीं होती। भेंट कैसे हो? उस दिन तो सुधारानी अन्न को अपने हाथ से नहीं छूतीं! इसलिये उनके साथ ही साथ मुझे भी एकादशी के मरुस्थल में कुटिया बनाकर दिन बिताना पड़ता है। इस महिमामयी एकादशी के दिन मेरे ऊपर जो बीतती है, उसे

मैं ही जानता हूँ। किन्तु मेरी सुधारानी को इसकी बिल्कुल परवाह नहीं! परवाह क्यों, वे तो इसे मेरा महाभाग्य समझती हैं। कभी जब एकादशी महाव्रत का मुझे उपदेश देने लगतीं हैं, तब मेरी पीठ पर अपने एहसानों का बहुत बड़ा बोरा पटकते हुये कहती हैं, कि लो मेरे साथ साथ तुम भी बैकुण्ठ-लोक में पहुँच जावोगे!

खैर, उस दिन खाने से भेंट तो होती ही नहीं, कभी कभी ऊपर से और अधिक आपदा भी आ जाती है। मैं यह कह चुका हूँ, कि उस दिन मेरी सुधारानी अन्न का नाम लेना तक पाप समझती हैं। यदि संयोगवश कोई भूला भटका आदमी उनके सामने रोटी का नाम ले ले, तो उनकी जीभ लाखों देवताओं के नाम की तीर्थयात्रा किये बिना हरगिज न रहेगी। और यदि कहीं अनजान में मेरे मुँह से कोई गड़बड़ शब्द निकल गया, तब तो मेरी सामत ही समझिये। एक दिन मैं इसी अपराध में इस तरह पिटा, इसतरह पिटा, कि वैसा कोई स्कूल का लतखोर विद्यार्थी भी क्या पिट सकेगा। सुनिये जरा मेरी दर्दनाक कहानी! पर देखिये, कहीं यह बात सुधारानी के कानों तक न पहुँच जाये! नहीं तो वे उस पिटाई का व्याज वसूल किये बिना हरगिज न रहेंगी।

माघ का महीना था। बड़े कड़ाके की सर्दी पड़ रही थी। दोनों दाँत इसप्रकार हिलते थे मानों मँजीरा बजा रहे हों!

मैं बाहर से घर लौट रहा था। ठीक छः बजे अपने शहर के स्टेशन के प्लेटफार्म पर कदम रक्खा! टिकट देकर बाहर आया और इक्के पर चढ़कर मन-ही-मन सोचने लगा, आज कई दिनों के बाद अच्छा भोजन मिलेगा। घर पहुँचते ही सुधारानी से कहूँगा, रानी आज ऐसी चुन चुनकर रोटियाँ बनाओ, कि दर्जनों खा जाऊँ। इसमें सन्देह नहीं, कि आज सुधारानी मेरा ख्याल करेंगी। वे अवश्य मन लगाकर आज मेरे लिये खाना बनायेंगी। इतने दिनों बाद घर लौट रहा हूँ। वे जब खाना बना कर मुझे खिलाने लगेंगी, तब मैं अतृप्त आखों से उन्हें निरखूँगा, उनकी छवि देखूँगा!

मैं यह सोच ही रहा था, कि एक्का रुक गया। इक्के वाले ने कहा—"बाबू जी उतरिये।" इक्के वाले की बात सुन कर गुस्सा तो ऐसा लगा, कि उसके पोपले गालों पर एक तमाचा जड़ दूँ। किन्तु जब आँख उठाकर देखा, तब सामने अपना मकान! बस, फिर क्या? सारा क्रोध प्रसन्नता की गोद में सो गया। मैं अपना बेग और बिस्तर लेकर इक्के से उतर पड़ा और फिर चल पड़ा मकान की ओर! इक्के वाले ने फिर पुकारा—बाबू जी पैसे। मैंने फिर उसकी ओर घूरकर देखा। इस तरह घूर कर देखा, जिस तरह सिंह हिरनी को देखता है। मगर पैसे तो उसे देने ही चाहिये। खैर, फिर लौटा! और उसे पैसे देकर जल्दी जल्दी अपने मकान की

ओर इस तरह बढ़ चला, जैसे लड़के किसी तमाशे की ओर बढ़ते हैं !

घर में पहुँचकर मैंने देखा, सुधारानी मूँज का आसन बिछाकर हनुमानचालीसा का पाठ कर रही हैं। मगर यह तो उनका नित्य का काम था। मुझे कुछ आश्चर्य न हुआ। मैं अपने कमरे में चला गया। कमरे में कुर्सी पर बैठकर सोचने लगा—अब सुधारानी का पाठ खतम ही होता होगा। अब वे आती ही होंगी। आते ही यह ज़रूर पूछेंगीं, कि मेरे लिये क्या लाये ? किन्तु घड़ी ने जल्दी जल्दी नौ बजा दिये और सुधारानी के अब भी दर्शन न हुये। मैं सोचने लगा, बात क्या है ? सुधारानी कहीं खफा तो नहीं हो गई हैं ? कम्बख्त अक़्ल ! मुझे यह ख्याल न रहा, कि आज महिमामयी एकादशी है। उधर आफिस जाने का समय हो रहा था और अदर-दरी में चूहे उछल कूद मचा रहे थे। मुझसे न रहा गया। मैं अपने कमरे से निकलकर सुधारानी के पास गया। मैंने देखा सुधारानी एक पहलवान की भाँति पलथी मारकर पाठ करने में लगी हैं, उनकी इस संलग्नता ने मुझे थोड़ी देर के लिये भयभीत कर दिया। किन्तु पेट में थी चूहों की उछलकूद। सारा डर न जाने किस लोक में चला गया, मैंने मनही मन हनुमान जी को मनाकर सुधारानी से कहा—सुधारानी, कुछ ख्याल भी है। नौ बज गये, क्या रोटी न बनेगी।

सुधारानी की तो मानों तपस्या ही भङ्ग हो गई। उन्होंने पहले मुझे एक तेज निगाह से देखा। उनकी वह निगाह, खुदा की क़सम, मेरे पेट में कूदने वाले सभी चूहे उसीतरह मर गये; जिस तरह प्लेग के मौसम में वे आनन फानन खतम हो जाते हैं। मेरी तो नाड़ी सन्न हो गई। मगर इतने ही से तो सुधारानी मानने वाली नहीं। वे रामनाम का जाप करती हुई उठीं और बासी पानी से भरी हुई बाल्टी उठाकर मेरी ओर चलीं। मैंने सोचा, आखिर सुधारानी ने मेरी बात मान ही ली। देखो न, वे मेरे स्नान के लिये बाल्टी में गरम जल ला रही हैं। मगर यह क्या? यह तो सारी बाल्टी उन्होंने मेरे ऊपर उँड़ेल दी। अब मुझे मालूम हुआ, कि आज महिमामयी एकादशी है। जनाब, मेरी तो आत्मा कांप उठी। एक ता सवेरे का जाड़ा दूसरे बासी जल, ऐसा ज्ञान पड़ा मानों किसी ने मेरे ऊपर बर्फ डाल दिया हो। पर वश क्या? चुप चाप कपड़े बदलकर आफ़िस चला गया। समझ लिया, कि आज अन्न से भेंट न होगी। हायरे महिमामयी एकादशी, तू सचमुच महिमामयी है।

मैं जब घर से आफिस चला, तब रास्ते में मेरे दिल में तरह तरह के विचार उठे। मैंने सोचा इस घटना की रिपोर्ट थ.ने में क्यों न कर दूँ। आप आकुल न हों। मैं अपनी सुधारानी को स्वयं कोई कष्ट नहीं देना चाहता! इसलिये

मैंने एक ऐसे थाने में रिपोर्ट लिखाने का निश्चय किया जहाँ सब सुधारानी ही के भाई-बन्धु निवास करते थे। अब आप समझ गये होंगे कि वह थाना कौन है! आप को भी जब कभी आवश्यकता पड़ा करे तब आप इसी थाने में रिपोर्ट लिखा दिया कीजिये। कहना न होगा कि मैंने रिपोर्ट लिखकर थाने में भेज दी। वहाँ जो कुछ फैसला हुआ उसका मेरी सुधारानी पर ऐसा प्रभाव पड़ा, कि एक साल तक वे मुझसे तीन और छः की भांति बनी रहीं।

जीता रहे पितृपक्ष! उसने मुझमें और सुधारानी में ऐसा मेल करा दिया कि कुछ पूछिये नहीं! यही नहीं मेरी आपदायें भी बहुत कुछ कम हो गईं, जरा सुनिये तो—

पितृपक्ष के दिन थे। आप तो जानते ही हैं, कि पितृपक्ष में नाखून कटाना तक मना है। और फिर मेरे घर में! क्या मजाल, कि कोई कड़ू के तेल का नाम ले ले। खैर राम राम करते पितृपक्ष बीता। हाथ के नख लम्बे २ हो गये थे सिर और दाढ़ी के बाल की तो कुछ बात ही न पूछिये। मुँह ऐसा मालूम होता था मानों कोई कन्दरा हो। दर्पण में जब मैं अपने मुँह को देखता, तब वह मुझे ही भूत की भांति काटने दौड़ता था। किन्तु पितृपक्ष! वश क्या?

पितृपक्ष की समाप्ति! मैं प्रसन्नता से नाच उठा। आज भला मुँह देखने के लायक तो बनेगा। मैंने सुधारानी से धीरे

से कहा—चार पैसे दीजिये। बाल बनवाऊँगा!

सुधारानी ने मेरी ओर देखा। उनकी आँखों में पश्चात्ताप था, सन्देह था; ऐसा जान पड़ा, मानों मुझसे कोई बहुत बड़ा पाप हो गया है। उन्होंने कहा—नहीं, नहीं आज बाल न बनवाइये। आज सनीचर है। सनीचर को घोड़े के भी नाखून नहीं काटे जाते।

मगर! मैंने कहा—जरा मुँह की ओर तो देखिये। जान पड़ता है, भूतों का अड्डा है। आज बड़े साहब आफिस मुआइना करने के लिये आवेंगे।

"मुआइना करने के लिये आवेंगे, आप का या कागजों का"! सुधारानी ने कर्कश स्वर में कहा—मैं कहती हूँ आज बाल न बनवाइये। मैं इसके लिये हरगिज आज पैसे न दूँगी।

मैं क्या करता? सुधारानी का धार्मिक हुक्म! मुझे उसके सामने अपना सिर झुकाना ही पड़ा। मैं चुपचाप आफ़िस गया, और सर झुका कर अपना काम करने लगा। बड़े साहब ठीक समय पर मुआइना करने के लिये आये। वे अभी इङ्गलैण्ड से बिल्कुल नये आये थे। वे मेरी कुर्सी के पास आकर खड़े हो गये।

मैंने उन्हें झुककर सलाम किया। उन्होंने मेरी ओर देखा। मेरे गन्दे कपड़े; बाल मैले और बड़े बड़े, तथा दाढ़ी बहुत बढ़ी हुई! मैं कुछ डरा। उन्होंने मुझसे मुआइना-बुक माँगी।

उन्होंने बिना मेरे कामों की जाँच किये हुये ही मुआइना बुक में लिख दिया—इस बाबू का काम अच्छा नहीं। यह बहुत गन्दा रहता है। इसकी तनख्वाह दस रुपया महीना घटा दी जाय।

मेरे हृदय पर वज्र सा गिर पड़ा। मैंने जब घर आकर सुधारानी को यह खबर सुनाई; तब उन्हें इतना शोक हुआ, कि उन्होंने तीन दिन खाना ही न खाया। इधर मेरी तो किस्मत चमक उठी। अब उस दिन से सुधारानी अपने पूजा-पाठ से भी ज्यादा मुझपर ऐसा ख्याल रखती हैं, मानो मैं ही उनका भगवान हूँ!
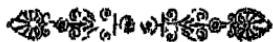
सावित्री की पूजा

मेरी सुधारानी ! क़सम खुदा की ! मैं बिल्कुल सच कह रहा हूँ। उतना ही सच कह रहा हूँ, जितना वसन्त ऋतु में कोयल और निशा के प्रभात काल में मुर्गों का बोलना सच है। आप आश्चर्य करेंगे ? किन्तु जनाब, यह मेरी सुधारानी के प्रति आप का अविश्वास होगा। यदि कहीं किसी सम्वादपत्र के सम्वाददाता के कानों में यह खबर पड़ गई और उसने

सेठ जी की तोंद सरीखी मोटी मोटी लाइनों में यह खबर अपने अखबार में छाप दी, तो सच मानिये, सुधारानी आपको अपमान की अदालत में घसीटे बिना हरगिज़ न रहेंगी। मैं तो अपमान की इस अदालत का कई बार शानदार मेहमान रह चुका हूँ। इसीलिये तो मैं आप से कहता हूँ, कि आप मेरी सुधारानी के प्रति अपने मन में न किसी क़िस्म का आश्चर्य का भाव और अविश्वास न लावें। वे बिचारी उतनी ही धवल और उतनी ही उज्वल हैं, जितना कलङ्क-विहीन चन्द्रमा की चाँदनी।

हाँ! तो मेरा कहना यह है, कि वे ईश्वर की अनन्य पुजा-रिनी हैं। ईश्वर उनके रोम रोम में बसा हुआ है। यदि ईश्वर ही होता तो गनीमत भी रहती; किन्तु वहाँ तो तेंतीस कोटि देवता और छत्तीस कोटि भवानियों का निवास है। उनके शरीर का एक भी ऐसा रोम नहीं, जहाँ कोई शक्ति-शाली देवता अपनी भवानी के साथ अड्डा न जमाये हो। मेरी तो इनके लम्बे चौड़े परिवार के कारण इतनी परेशानी है, कि कुछ पूछिये नहीं। रात बीत जाती है, किन्तु कहीं सोने के लिये जगह ही नहीं मिलती। दिन समाप्त हो जाता है, किन्तु कहीं बैठकर साँस लेने का अवसर ही नहीं मिलता। अपनी सुधारानी के शरीर-रूपी विराट महल में जिस ओर जाता हूँ, उसी ओर देखता हूँ! देवताओं और भवानियों को!!

इस बीसवीं सदी में सारा संसार अपने अधिकारों के लिये लड़ रहा है। कोई वोटर बनना चाहता है, तो कोई कौंसिल का मेम्बर बनना चाहता है। कोई देश की स्वतन्त्रता चाहता है, तो कोई सामाजिकता की कचौड़ी के लिये हलवाई की दूकान पर खड़ा है। किन्तु जनाब, मैं तो यह सब कुछ नहीं चाहता। मेरे रोम रोम से तो सदैव यही निकलता रहता है, कि सुधा-रानी के शरीररूपी तूफान मेल पर बिना टिकट के जो देवता और भवानी सवार हैं, वे कान पकड़कर उतार दिये जाँय। मैंने इसके लिये नारद भगवान की असेम्बली में इस सम्बन्ध का एक प्रस्ताव भी उपस्थित किया था। इसमें सन्देह नहीं, कि असेम्बली के सभी मेम्बरों ने मुझसे सहानुभूति दिखाई; किन्तु नारद रूपी वाइसराय महोदय ने अपने विशेषाधिकार से वह पास-शुदा प्रस्ताव रद्द कर दिया। क्या करें, भाई जमाना शक्तिशालियों का है न !!

आप सोचेंगे; मैं कल्पना का दुर्ग खड़ा कर रहा हूँ, नहीं जनाब, इस जमाने में जब कि लोग श्रीमतियों के आर्डीनेन्स के शिकार हो रहे हैं, मैं सुधारानी के खिलाफ कैसे आवाज उठा सकता हूँ। न, न, खिलाफ और विरुद्ध को तो यहाँ स्थान ही नहीं। न जाने कहां से यह नापाक शब्द मेरी सुधारानी की चर्चारूपी मैदान में कूद पड़ा। देखिये, कहीं उनके कान में टेलीफोन न लगा दीजियेगा। यदि ऐसा हुआ तो फिर मुझे

किसी ऐसे एडवोकेट को तलाश करनी पड़ेगी, जिसे अदालत में कभी एक पैसा भी नहीं मिलता। खैर जाने दीजिये इन बातों को, मैं तो जो कुछ यहाँ कहूँगा; वह सब सुधारानी के गुणानुवाद में। गुणानुवाद में इसलिये कि वे इस युग के तुंदैल देवताओं और भवानियों की छकड़ागाड़ी बनी हुई हैं !!

हाँ तो वे ईश्वर की अनन्य पुजारिनी हैं। धूप हो या शीत, घण्टों गङ्गा के किनारे नाक दबाकर बैठी रहती हैं। मेरी कौन कहे, उन्हें नाक दबाने के समय अपना भी ध्यान नहीं रहता। आप उस समय उनके ऊपर चाहे पत्थर की पटिया पटक दें, किन्तु क्या मजाल, कि उनकी जबान पर जरा उफ् तक आये। वे जब किसी देवता की पूजा के लिये उसके पास बैठती हैं तब घण्टे की तो बात ही क्या ? कई घण्टों तक बैठी रहती हैं। जब देवता की धूप-दीप से आरती करके घण्टी बजाने लगती हैं, तब तो मुझे ऐसा मालूम होता है, मानों मैं विष्णु भगवान् के महायान पर चढ़कर स्वर्ग की यात्रा करने जा रहा हूँ।

मेरी सुधारानी कितनी पुजारिनि हैं, धर्म और ईश्वर के प्रति उनके हृदय में कितना गहरा विश्वास है, यह तो आप के नीचे की इन लाइनों ही से मालूम हो जायगा।

जेठ का महीना था। दिन और तारीख मुझे ठीक ठीक

में चारपाई पर पड़ा था। बुखार इतना तेज था, कि कुछ पूछिये नहीं। भीतर से जब बाहर साँस निकलती तब मुझे ऐसा जान याद नहीं। किन्तु यह अवश्य याद है, कि उस दिन मैं बुखार पड़ता था, मानों मेरी एक एक साँस में किसी भयङ्कर ज्वालामुखी का विस्फोट होने वाला है। सुधारानी उस दिन रात भर मेरी चारपाई के पास बैठकर जागती रहीं। बीच बीच में कभी वे कुछ गुनगुना भी दिया करती थीं। उस दिन सुधारानी को उस रूप में पाकर मैंने सोचा, कि सुधारानी अपने देवताओं की तरह मेरी भी पूजा में किसी प्रकार की कुछ कोर कसर नहीं रखतीं।' देखो न, बेचारी शोक में जागकर सवेरा कर रही हैं। इतना ही नहीं, मेरे उद्धार के लिये अपने देवताओं और भवानियों का आवाहन भी कर रही हैं। उस समय मैं यद्यपि बुखार में था; किन्तु तो भी अपनी सुधारानी को इस रूप में देख कर मेरे हृदय में खुशी का फौवारा सा छूट पड़ा था!

किन्तु सूरज निकलने के साथ ही मेरी खुशी का सारा फौवारा सूख गया। मुझे ऐसा जान पड़ा, मानों सूरज ने पूरब से निकल कर मेरी सुधारानी के कान भर दिये हों। सुधारानी मेरे पास से उठकर नीचे गईं, और फिर शाम तक उनका दर्शन न हुआ!! इसका एक बड़ा गहरा रहस्य है। उस दिन वे वट की पूजा करने वाली थीं। शायद आप की श्रीमती जी भी सावित्री

और सत्यवान की याद में बट की पूजा करती हों। यदि हाँ, तो इसमें सन्देह नहीं कि आप के ऊपर भी मेरी तरह कभी गहरी बीती होगी!

मैं बुखार में छटपटा रहा था। मगर सुधारानी को तो अपनी पूजा की फिक्र थी। वे मेरे पास से उठकर नीचे गईं, और नहा धोकर लगी पूड़ी कचौड़ी बनाने। जब कड़ाही में छनकते हुए घी की आवाज मेरे कान में पड़ी, तब मैं समझ गया कि हो न हो, आज किसी देवता और भवानी की पूजा-पाठ का दिन है। मेरे तो रोंगटे खड़े हो गये। बुखार अपनी दूनी प्रगति से सिर पर सवार हो गया। क्योंकि पूजा पाठ के दिन सूरज अस्त के पहले शायद ही कभी अन्न से भेंट होती हो।

एक ओर बुखार था, और दूसरी ओर पूरियों और कचौ-रियों की मादकमयी सुगन्धि! अगर पूड़ियाँ और कचौड़ियाँ ही होतीं तो गनीमत थी, मगर वहाँ तो सुधारानी ने उस दिन न जाने कितने मादकमय पकवान तैयार किये थे। उन सब की सुगन्धों ने जब एक साथ ही मेरे उदर राज्य पर चढ़ाई की, तब जीभ से लार टपकने लगी। मुझसे न रहा गया। मैं भी नीचे उतर कर भोजनालय में गया और सुधारानी से गिड़-गिड़ाकर एक कचौड़ी के लिये प्रार्थना करने लगा!

कई दिन हो गये थे, बुखार के कारण मैंने स्नान नहीं

किया था। स्नान की तो बात ही क्या, कपड़े भी न बदले। सुधारानी मुझे भोजनालय में देखकर ऐसी गरज पड़ीं, कि मेरा हाथ उछल कर एकदम अपने सिर पर जा पहुँचा। मैंने सोचा, कहीं आसमान से बिजली न टूट पड़े। मुझे विवश होकर उलटे पैरों ही फिर अपने ऊपर के कमरे में लौट जाना पड़ा। यदि मैं भूलता नहीं, तो यह बिल्कुल ठीक है, कि भोजनालय में जहाँ जहाँ मेरे पैर पड़े थे, वहाँ वहाँ की मिट्टी को सुधारानी ने खोद कर बहा दिया था। उनकी उस दिन की पवित्रता को देखकर मैं अपने भाग्य की ऐसी सराहना करने लगा था, कि कुछ पूछिये नहीं! यदि वहाँ कोई दुःखान्त-पसन्द कवि होता, तो इसमें सन्देह नहीं, कि वह मेरे भावों की छाया में बैठकर एक बहुत बड़ा काव्य लिख डालता!!

गर्मी का महीना था; और उसपर बुखार की तेजी। मैं कोठे पर चारपाई पर पड़ा हुआ आह का महास्तोत्र जप रहा था। किन्तु सुधारानी को इसकी कुछ चिन्ता ही नहीं। चिन्ता कैसे हो, वे तो सती सावित्री के महाव्रतरूपी हवाई जहाज पर चढ़कर स्वर्ग जाने की तैयारी कर रही थीं। मैंने कई बार उन्हें पुकार कर उनसे पानी माँगा। किन्तु जैसे उनके कानों में हिमालय पहाड़ समा गया हो! उन्होंने मेरी चीख-पुकार पर कुछ भी ध्यान न दिया, न दिया!!

मैं इधर बुखार से अभिनय कर रहा था; और उधर सुधारानी

कड़े और छड़े की आवाज़ से सारे घर को भौंरों और मधु की मक्खियों का छत्ता बना रही थीं, यदि मैं अच्छा होता तो उस दिन अपनी सुधारानी की कितनी आदर अभ्यर्थना करता! कुछ न पूछिये, उन्हें एकदम स्वर्ग की महारानी बना देता। किन्तु अफ़सोस! मेरी सुधारानी के भाग्य में स्वर्ग की महारानी होना बूढ़े ब्रह्मा ने लिखा ही नहीं था! इसीलिये बुखार ने मुझे अपना लद्दू बैल बना लिया और इसीलिये तो सुधारानी मुझे तड़पता हुआ छोड़कर सावित्री की पूजा करने के लिये चली गईं!

सुधारानी सावित्री की पूजा करके कब लौटीं, यह तो मैं नहीं कह सकता, किन्तु वे जब लौटीं; तब मैं बहुत कमज़ोर हो गया था। मेरे पास डाक्टर साहब भी बैठे हुये थे। डाक्टर साहब ने मुझे बताया, कि आप बहुत देर से बेहोश होकर पड़े थे। डाक्टर साहब के साथ ही सुधारानी भी रिकार्ड की तरह बज उठीं। खैरियत हुई! यह सब सावित्री महामाया का प्रसाद है! नहीं तो आज............

सुधारानी के आँखों में आँसू छलक आये। मैंने सोचा, एक अध्याय से किसी भाँति छुटकारा मिला, तो दूसरा अध्याय शायद मेरी जान को गेंद चुराकर रफूचक्कर ही हो जाय! कुछ देर तक चुप रहकर मैं डाक्टर साहब की ओर इस तरह देखने लगा, मानों मैं उनसे कोई भीख माँग रहा हूँ। जीता रहे

डाक्टर का बेटा! उसने मुझे एक गिलास दूध देकर मेरे उड़न्छू होते हुये प्राणों को बचा लिया! मैं दूध पीता जाता था, और साथ ही अपने मनमें यह कहता जाता था कि हायरी पूजा, हायरे कलियुग के देवता!!

ए
क
क
प
चा

मेरी सुघागनी! उनमें और मुझमें गजब की होड़ाहोड़ी है। वे जब दिन में गृहस्थी की चक्की चलाती हैं, तब मैं शङ्कर जी के सच्चे पुजारी की तरह आफ़िस के मन्दिर में रजिस्टरों के देवताओं की पूजा-अर्चना में लगा रहता हूँ! वे जब धौंकनी की तरह चूल्हे में फूँक मारती हैं, तब मैं बे-कलपुरजे की मोटर-कार बनकर बच्चों को बाग की सैर कराता हूँ। इतना ही नहीं

इतनी ही गुस्ताखी पर चद्दर की जगह दुलाई ताने हुये बिना हरगिज न रहतीं ! किन्तु यहाँ तो था हार का सवाल ! बेचारी बहुत देर तक अपराधिनी की भांति मेरी चारपाई के पास खड़ी रहीं। आखिर मेरे कलेजे से भी करुणा की धारा छलछला उठी। मैंने चद्दर के क्षीर सागर से अपना सर बाहर निकाल कर कहा—क्या है ?

उन्हें तो मानों कोई नियामत सी मिल गई। उन्होंने झट से उस अखबार में बने हुये हार का नमूना मेरी आँखों के सामने कर दिया। मैंने उसे देखकर कहा—कुछ ख्याल भी है। तीन दिन आफिस गये हो गये। फिर यह हार आयेगा तो कहाँ से ?

अब सुधारानी को जैसे अपनी भूल-सी मालूम हुई। दो बज गये थे। बेचारी झट से लकड़ी लेकर चूल्हे की तरफ लपक चलीं ! और जल्दी से पराठे तरकारी बनाकर मुझे इसतरह खिलाने बैठ गईं मानो मैं उनका भगवान हूँ। मेरी उस दिन की वह विजय ! मेरा सर सातवें आसमान पर आ बैठा। अब मैं बात बात में सुधारानी को नीचा दिखाता। बात बात में स्त्रियों को अपमानित करने की चेष्टा करता। मेरी सुधरानी मेरी उन बातों को इसतरह सुनती थीं; मानों वे उन्हें सावधानी से लिखती जा रही हों !!

सचमुच वे लिखती आ रही थीं ! एक दिन प्रभात का समय

था। आठ बज चुके थे। सुधारानी बड़ी सतर्कता से अपने पैर का लच्छा साफ कर रही थीं। ऐसी तन्मयता और ऐसी संलग्नता से, मानों कोई पुरातन तपस्वी भगवान का ध्यान कर रहा हो! मेरा दुर्भाग्य! हाय, मैं बुलबुल की भाँति बोल उठा—सुधारानी, आठ बज गये। एक कप चा तो पिला दीजिये। अभी थोड़ी देर के बाद आफ़िस जाना होगा।

जैसे विश्वामित्र की गहरी तपस्या भङ्ग हो गई हो। सुधारानी ने मेरी ओर देखा। मेरी तो आत्मा फुदक कर स्वर्ग के खोते में जा बैठी! किन्तु फिर भी उनके दिल से दया का स्रोत न उमड़ा। उन्होंने कहा—देखते नहीं, मैं क्या कर रही हूँ! मुझे भी तो कुसुमरानी के घर दावत में जाना है। जब फुरसत पा जाऊँगी तो चा बना दूँगी।

मगर! मैंने सुधारानी की ओर देखकर कहा—मुझे तो दस बजे ही आफ़िस जाना है। जान पड़ता है आज खाना भी न बनेगा!

बस अब फिर क्या? सुधारानी जैसे चर्खी बन गईं। लगीं लच्छे की सफाई के साथ सूत कातने। जब ये सूत कातने लगीं, तब मैंने बिलकुल चुप्पी अख्तियार कर ली। चुपचाप चारपाई पर जाकर पड़ रहा। आफ़िस जाना है, या कुछ काम भी करना है। इसका मुझे कुछ पता ही नहीं था। पता कैसे हो? वहाँ तो हार जीत का सवाल था। बारह बज गये।

मैं चारपाई से न उठा, न उठा। सुधारानी मुझसे एक नम्बर भी कम नहीं। जब वे अपना सब काम खतम कर चुकीं, तब कहीं चा तैयार करके मेरे पास ले आईं। मेरे आग्रह की भी रक्षा हुई। मैंने जल्दी जल्दी चा गले के नीचे उतारा। खाने का कुछ ख्याल भी न रहा। झट से साइकिल उठाया और आफ़िस की ओर चल पड़ा। सोचा आफ़िस में चलकर आधे ही दिन की हाजिरी बजा दूँ।

किन्तु कम्बख्त इक्का! न जाने कहाँ से मुझे खोजता हुआ भागा आ रहा था। वह मेरी साइकिल से इस तरह भिड़ गया, मानों उसकी मेरी साइकिल से कई जन्मों की दुश्मनी हो! बेचारी मेरी साइकिल के अङ्ग प्रत्यङ्ग टूट गये! किन्तु खुदा का शुक्र! मेरी केवल एक टाँग ही टूट कर रह गई। मैं अलग पड़ा था, मेरी साइकिल अलग! कोई दिल का दर्द भी न पूछता! जिसे देखिये, वही हम दोनों की हालत पर क़हक़हा लगा रहा था! इसी समय भीड़ में से एक आदमी आगे बढ़ा। वह मेरे आफिस का चपरासी था। वह मेरी बर्खास्तगी का हुक्म मेरे घर पर सुधारानी को देकर आफ़िस की ओर जा रहा था। उसने मुझे एक गठरी की भाँति उठाकर इक्के पर लादा! उसने इक्के वाले से कहा—ले चल जल्दी अस्पताल!!

उसकी बात खतम भी न हो पाई थी कि मैंने कहा, नहीं।

अस्पताल नहीं, आफिस। वह मेरा मुँह देखने लगा। उसने मेरी ओर करुणा की दृष्टि से देखकर कहा—बाबू ! आप तो बर्खास्त............

वह चुप हो गया। मैंने कहा—कोई हर्ज नहीं ! मुझे ले चलो आफिस ! बस फिर क्या ? इक्का आफिस की ओर चल पड़ा। आफिस में पहुँचकर चपरासी ने बड़े साहब के सामने मुझे फिर गठरी की तरह उतारकर नीचे रख दिया। मैं जोर से चिल्ला उठा ! साहब के हृदय में एक करुणा-सी दौड़ गई। उसने कहा—बाबू ! मैंने तो तुम्हें बर्खास्त कर दिया था; किन्तु तुम्हारी हालत देखकर तुम्हें फिर बहाल कर रहा हूँ। अब प्रतिदिन ठीक समय पर काम पर आया करना !

मेरा तो सारा दर्द ही भूल गया। मैं जब अस्पताल से पट्टी बँधवा कर लँगड़ाता हुआ घर पहुँचा तब सुधारानी मुझे देखते ही बड़े जोर से चीख मारकर चिल्ला उठीं। लगीं जोर जोर से रोने। ऐसा जान पड़ता था, मानों सचमुच इक्के और साइकिल की लड़ाई में मेरी जान चली गई हो ! मैं सोचने लगा, ओह ! मेरी सुधारानी मुझे इतना प्यार करती हैं। किन्तु उन्होंने दूसरे ही क्षण कहा—हाय ! मैं तो लुट चुकी ! तुम बर्खास्त कर दिये गये। फिर अब मैं लोगों के सामने कैसे मुँह दिखाऊँगी ! मैं समझ गया कि वास्तव में बात क्या है ? मैंने सुधारानी से कहा—सुधारानी चिन्ता न

करो। मैं फिर बहाल हो गया। पर अब एक कप चा मुझे रोज सवेरे पिला दिया करो!

बस, उसी दिन से सुधारानी मुझे प्रतिदिन सवेरे एक कप चा पिला दिया करती हैं! जब तक मैं आफिस नहीं जाता तब तक वे घर और आँगन में इस तरह फिरती रहती हैं, जैसे फिरिहिरी!

मँ
ग
नी
के
मि
याँ

मिसं फाउन्टेन ! कुछ न पूछिये, उनका सौन्दर्य ! मानों सौन्दर्य की चलती फिरती तस्वीर हों। गोरा बदन; मुँह चौड़ा और पेट, मानों फुलाया हुआ रबड़ का गुब्बारा। जब चलतीं; तब ऐंठती हुई, कमर के भार से पैरों को लचकाती हुई। चाहे जब देख लीजिये, आखों में सुरमा, मुँह पर पाउडर की बहार

और ओठों पर रङ्ग की दौड़! बेचारे अरुण बिम्बाधर भी लजा जाते, शरमा कर घूँघट के नीचे सरक जाते। मिस फाउन्टेन, सुरमा से सुरमा बनी हुई अपनी आँखों को चारों ओर पसारती हुई, जब चलतीं; तब सड़क के कुत्तों के दिल में भी सङ्गीत की जागृति उत्पन्न हो जाती! बेचारे मिस फाउन्टेन के महामहिम कृष्णारूप पर ऐसे रीझ उठते थे, कि अपने अस्तित्व को भी भूल जाते! उनका वह रङ्ग, उनका वह रूप, और उनकी वह चाल! कुत्ते एक साथ ही सङ्गीत की धारा छोड़ देते। ऐसी सङ्गीत की धारा छोड़ देते, कि मिस फाउन्टेन को अपने बचाव के लिये किसी घर की तलाश करनी पड़ जाती।

मिस फाउन्टेन सतरङ्गी छतरी जब अपने सिर के ऊपर लगा कर सड़क पर चलतीं, तब अपने नयनों की रौनक को चारों ओर बिखेरती हुई, सावन की भाँति उसकी फुहियाँ बरसाती हुई! किन्तु फिर भी कोई दो पैर वाला उनकी ओर आँख उठाकर न देखता। जो देखता—उसकी आँखें फौरन मिस फाउन्टेन के पास से लौट आतीं, मानो मिस फाउन्टेन कोई धधकती हुई आग हों। किसी के नेत्र उसके पास टिकते ही न थे। मिस फाउन्टेन नेत्रों के ठहराव के लिये प्रतिदिन अपनी आकृति पर नये नये दिव्य महल तैयार करतीं। किन्तु कोई किरायेदार कभी आता ही नहीं था। कभी

यदि भूले भटके कोई आता भी तो, वह एक बार मिस फाउन्टेन को देखकर ऐसा भाग जाता, कि कुछ पूछिये नहीं ! मिस फाउन्टेन बड़ी दुःखी होतीं। बेचारी, कभी कभी इस दुःख में खाना भी न खातीं। किन्तु खायें या न खायें, उनके दिल की पूछने वाला था ही कौन ?

सन्ध्या का समय था, रविवार का दिन। जिसे देखिये वही अपनी श्रीमती जी के साथ अठखेलियाँ करता हुआ सड़क पर बढ़ा जा रहा था। किन्तु मिस फाउन्टेन अधिक उदास थीं। रविवार के दिन भी उनसे कोई यह न कहने आया, कि चलो चलें पार्क घूम आयें। अपनी अपनी किस्मत तो है ! मिस फाउन्टेन बहुत देर तक अपने बँगले पर बैठकर अपने दरवाजे की ओर देखती रहीं ! किन्तु सूर्य अस्त हो जाने पर भी किसी ने उनके बँगले की ओर झाँक कर न देखा। मिस फाउन्टेन ज्यों ज्यों अपने दिल को मनाती थीं, त्यों त्यों उनका दिल और भी मिठाई के लिये रूठे हुये बालक की भाँति मचलता जाता था। मिस फाउन्टेन ने अपने दिल को मनाने के लिये असंख्य तरकीबें कीं किन्तु सब निष्फल, सब बेकार ! अन्त में परेशान होकर वे मशीन की कड़ाही से छनकर आई हुई एक टटकी पत्रिका पढ़ने लगीं। मिस फाउन्टेन किसी भी लाजवाब पत्रिका में विज्ञापन को छोड़कर और कुछ न पढ़तीं। जिस पत्रिका में सौन्दर्य-साधन के विज्ञापनों का बाजार गरम रहता, वही

मिस फाउन्टेन के कर कमलों में सम्मान से स्थान पाती। उसी के अक्षरों को मिस फाउन्टेन अपने नयनों की लुनाई भी पिलातीं, और उसके एडीटरों को वे इतना धन्यवाद देतीं, जितना कि कोई अपनी कमाई खिलाने वाले को धन्यवाद न देता होगा।

मिस फाउन्टेन की आँखें विज्ञापन के अक्षरों पर दौड़ रही थीं। इस तरह दौड़ रहीं थीं, मानों तेज हिरनी। सहसा उनकी आँखें पत्रिका के एक पृष्ठ पर रुक गईं। उन्होंने अपनी आँखों को गड़ाकर देखा, एक विज्ञापन। हेडिङ्ग था, मँगनी के मियाँ। मिस फाउन्टेन की तो बाछें खिल गईं। अङ्ग अङ्ग में प्रसन्नता—रग रग में उन्माद! ऐसी प्रसन्नता उन्हें उनके जीवन में कभी न प्राप्त हुई थी। वे सोचने लगीं, मँगनी के मियाँ? क्या दुनियाँ में मँगनी के मियाँ भी मिलते हैं? तब तो बड़ी अच्छी बात है। बेचारे एडीटर ने तो इस विज्ञापन को छापकर मेरी मुसीबत कम कर दी! चाहे कुछ भी हो, मैं मँगनी के मियाँ को अपने बंगले पर जरूर लाऊँगी!

मिस फाउन्टेन पत्रिका में छपे हुये पते को नोट कर शीघ्र तारघर पहुँचीं। उन्होंने मँगनी के मियाँ को तार देते हुये लिखा कि मुझे आपकी सख्त जरूरत है। मैं नेक्स्ट ट्रेन से स्वयं आप के पास पहुँच रही हूँ। तार पाकर मँगनी के मियाँ ने अपने दिल में क्या सोचा होगा, यह तो मँगनी के मियाँ ही जानें!

किन्तु जब मिस फाउन्टेन ट्रेन से उतर कर उनके घर का पता लगाती हुई उनके घर पहुँचीं, तब वहाँ का रङ्गढङ्ग देखकर मिस फाउन्टेन का तो दिल धड़क उठा।

अँधेरी गली में एक टूटा मकान, मानों उसने कई क़यामत अपनी आँखों से देखी हों। मकान के बरामदे में तीन कुर्सियाँ पड़ी थीं। एक खाली थी। मगर दो की गोद में एक एक महामहिम विराजमान थे। इनमें एक स्त्री थी, और दूसरा पुरुष। दोनों आपस में खूब झगड़ रहे थे। इस तरह झगड़ रहे थे, मानों मुर्गा और मुर्गी। मिस फाउन्टेन थोड़ी देर तक उनका युद्ध देखती रहीं। इसके पश्चात् उन्होंने डरते डरते जुबान खोली—क्या मँगनी के मियाँ यहीं रहते हैं?

हाँ मँगनी के मियाँ यहीं रहते हैं, स्त्री ने तीव्र दृष्टि से मिस फाउन्टेन की ओर घूरते हुये कहा—यह सामने की कुर्सी पर विराजमान हैं। आप को इनकी ज़रूरत है क्या?

मिस फाउन्टेन ने पुरुष की ओर देखा। नये ज़माने का अपटूडेट-जेन्टिलमेन! मिस फाउन्टेन का कलेजा बाँसों उछल पड़ा। उन्होंने अपनी रसीली निगाह नीचे करके कहा—मैंने उन्हें तार दिया था।

अच्छा तो आप ही मिस फाउन्टेन हैं! स्त्री ने आश्चर्य प्रगट करते हुये कहा—आइये बैठिये! आप की बड़ी मेहर-

भारी होगी, यदि आप इन्हें कुछ दिनों के लिये मुझसे मँगनी माँग ले जाँय !

मिस फाउन्टेन कुछ कहना चाहती थीं, कि स्त्री फिर बुलबुल की तरह चहक उठी—कुछ नहीं ! शायद आप मुझसे शर्त पूछ रही हैं। मगर शर्त कुछ भी नहीं है। आप इन्हें अपने साथ ले जाँय, खुशी से जाइये साहब, तशरीफ़ ले जाइये।

मँगनी के मियाँ उठकर खड़े हो गये, मानों पहले ही से कमर कसे बैठे हों। मिस फाउन्टेन पहले तो कुछ शरमाईं, कुछ झिपीं मगर, फिर उठकर खड़ी हो गईं और स्त्री को धन्यवाद देकर इस तरह चल पड़ीं, मानों मँगनी के मियाँ की वे विवाहिता स्त्री हों !

× × ×

रात का समय था। मिस फाउन्टेन सो रही थीं। मँगनी के मियाँ को पाने की खुशी में वे इतनी डूब गईं थीं, कि उन्हें अपने तन बदन का भी ख्याल न रहा। दो बजे के लगभग सहसा मिस फाउन्टेन की नींद खुली। उन्होंने आँखें पसार कर देखा, तो मँगनी के मियाँ गायब ! बेचारी लगी, उन्हें दौड़-दौड़कर बङ्गले में खोजने। मगर यह क्या ? यहाँ तो आलमारी और सन्दूक सभी टूटे हुए हैं। चीजें इधर-उधर बिखरी हुई पड़ी हैं। मिस फाउन्टेन ने ध्यान से देखा, तो सब माल असबाब गायब ! बेचारी मस्तक थामकर बैठ गईं। कुछ

देर के बाद जब उठीं, तब चल पड़ीं टिकट कटाकर मँगलो के मियाँ के घर। वहाँ पहुँचीं तब देखती क्या हैं, कि घर सूना पड़ा है। केवल दीवार पर एक साइनबोर्ड लटक रहा था। उसपर लिखा था, मँगली के मियाँ!
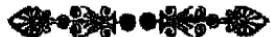
वोटर देवता

सन्ध्या का समय था। मँगरू अपने दरवाजे पर हुक्का गुड़गुड़ा रहा था। उसके सामने उसकी एक छोटी सी बिटिया खेल रही थी। उसके बदन पर एक गन्दा कुर्ता! वह स्वयं भी धूल में लिपटी थी! उसके नाक के पास संसारव्यापी मक्खियों की एक सभा लगी थी। ऐसा जान पड़ता था, मानों मक्खियाँ मँगरू की बिटिया की नाक के पास एकत्र

होकर इटली और अबसीनिया के झगड़े पर विचार कर रही हों।

सहसा मक्खियाँ भिनभिना कर उड़ गईं। मानों उनपर किसी ने गोलाबारी की हो। रोने और चीखने की एक सङ्गीत! मँगरू की छोटी बिटिया भी शूनरी के बच्चे की तरह चिल्ला उठी। मँगरू का ध्यान भङ्ग हुआ। उसने आँख उठाकर देखा, शहर के सेठ घसामल! घसामल मँगरू की बिटिया को अपने सफेद कपड़ों से सजी हुई गोद में लेकर चुपचाप खड़े थे!

अरे यह क्या सेठ जी! मँगरू बोल उठा—नीचे उतार दीजिये बिटिया को। देखिये आप के कपड़े गन्दे हो गये।

कुछ हर्ज नहीं मँगरू—सेठ जी ने उत्तर दिया बच्चा है न! जैसे मेरा बच्चा, वैसे तुम्हारा बच्चा। तुम तो जानते ही हो कि मैं बच्चों को अधिक प्यार करता हूँ। क्यों री बिटिया, तुमने कुछ खाया है या नहीं।

बिटिया ने सिर हिलाया। उसका जवाब हाँ या ना, यह कौन जाने? पर सेठ जी ने जेब से एक रुपया निकाल कर उसके हाथ पर रख दिया।

मँगरू सेठ जी की ओर देखने लगा। वह मनही मन न जाने क्या क्या सोच रहा था। शायद वह सोच रहा था, कि सेठ जी के दिल में आज दया के इतने बादल कहाँ

से उमड़ पड़े। अभी उस दिन तो इनकी दूकान पर चिड़िया ने जरा सा पाखाना कर दिया था तो उसके लिये इन्होंने मेरी खासी मरम्मत की थी! पर आज तो ये ऐसे प्रेमी बन गये हैं, कि इनके प्रेम को देखकर इसाई पादरी याद आ जाते हैं!

मँगरू अभी सोच ही रहा था, कि सेठ धन्नामल जी बोल उठे—मँगरू! मेरी तुमसे एक प्रार्थना है। मेरी लाज तुम्हारे ही हाथ में है। यदि दया करो तो मेरी पार्टी म्युनिस्पैलटी के चुनाव में जीत जाय।

मँगरू को आश्चर्य हुआ। म्युनिसपैलिटी का चुनाव! वह इस रहस्य को क्या जाने? वह चमार के घर में पैदा हुआ, वहीं पला, और वहीं से बढ़कर जवान हुआ। अब उसको बुढ़ाई भी आ गई। उसने कभी चुनाव तो देखा नहीं था। वह आश्चर्य में पड़कर कहने लगा—सेठ जी यह आप क्या कह रहे हैं? बताइये मुझे क्या करना होगा?

सेठ जी ने मंगरू के चरणों पर अपनी टोपी रखते हुये कहा—मंगरू तुम अपनी जाति के चौधरी हो, तुम्हारे कहने के मुताबिक ही तुम्हारी जाति के आदमी काम करेंगे! इस लिये तुम इस मुहल्ले के अपने भाई बन्धुओं से कह दो, कि वे मेरी पार्टी की ओर से खड़े होने वाले कलवारू ही को वोट दें।

बोट! मंगरू कुछ गोब से बोल उठा—बोट क्या चीज है? सेठ जी! हमलोगों के पास तो बोट नहीं। बोट तो गङ्गा जी में चला करती है! वह आप को मल्लाहों के पास मिलेगी।

तुम समझे नहीं मंगरू—सेठ जी ने दुखी होकर कहा—बोट से यह मतलब है, कि जब मैं तुम लोगों को साहब के सामने पेश करूंगा तब वहाँ तुम लोगों को यह कहना पड़ेगा, कि हमलोग सेठ जी की पार्टी को चाहते हैं।

वाह! मंगरू ने जवाब दिया—यह कौन सी बड़ी बात है सेठ जी! हमलोग साहब के सामने चलकर कह देंगे, कि हम लोग सेठ जी हो की पार्टी को चाहते हैं।

सेठ जी की तो जैसे बाछें खिल गईं। उन्होंने मानों किसी किले पर फतहयाबी हासिल कर ली हो। बेचारे मंगरू को सलाम कर खुशी की घोड़ी पर सवार होकर अभी वहाँ से टले ही थे, कि मंगरू के सामने वकील साहब आ धमके!

अरे वकील साहब! एक दूसरा चमार दूसरी ओर से चिल्ला उठा। मंगरू के सिर पर तो मानों गाज सी गिर गई। वह झटपट अपने हुक्के की निगाली भूमि पर फेंक उठकर खड़ा होने लगा। किन्तु वकील साहब ने आगे बढ़कर प्यार से उसका हाथ पकड़ लिया! और उसे चारपाई पर बिठाते

हुए कहने लगे—कुछ हर्ज नहीं मंगरू! तू बैठ चारपाई पर, मैं भी इसी पर बैठ जाता हूँ।

मंगरू ने समझा आज सौभाग्य का दिन है। जिन्दगी में ऐसे दिन बार बार नहीं आया करते। मंगरू चारपाई पर पंचराज की भांति बैठ गया। वकील साहब भी अनारी की भांति पैर की ओर बैठ गये। मंगरू वकील साहब की ओर देखने लगा। मानों वह एक कठोर हाकिम की भांति उनसे कुछ पूछ रहा हो! वकील साहब कुछ देर चुप रहने के बाद बोल ही तो उठे—मंगरू तुमने इस साल अपने घर की मरम्मत नहीं करवाई। तेरा घर तो बहुत पुराना हो गया है।

क्या करूं वकील साहब! मंगरू ने उत्तर दिया—घर की मरम्मत कराने के लिये पास में पैसे ही नहीं। आप घर की मरम्मत कराने के लिये कह रहे हैं! यहाँ खाने के लिये पेट भर अन्न नहीं मिल रहा है।

चिन्ता न करो मंगरू! वकील साहब ने कहा—मैं तुम्हारे घर की मरम्मत करवा दूंगा। तुम्हारी रोजी का भी प्रबन्ध कर दूंगा। किन्तु तुम अपनी बिरादरी के आदमियों से मेरी पार्टी को वोट दिलवा दो।

वोट किस चिड़िया का नाम है, यह मंगरू सेठ धन्नामल से अभी सुन चुका था। वह अब यह समझ गया था, कि मेरे

हाथों में एक बड़ी भारी ताक़त है। मंगरू ने उत्तर दिया—वकील साहब वोट देने दिलाने में मुझे कोई हर्ज नहीं। किन्तु आपलोग हमलोगों को अछूत समझते हैं। फिर हमलोगों के दिये हुये वोट को कैसे स्वीकार करेंगे ?

वकील साहब मुह बनाकर हंस पड़े। उन्होंने मंगरू के सामने भीगी बिल्ली सी बनकर कहा—मंगरू यह क्या कह रहा है ? तुमलोगों को अछूत भला कौन समझता है ? जो समझता होगा, वह समझे। मुझे तो यदि तुम कहो तो मैं तुम्हारे घर खाना भी खा सकता हूँ।

मँगरू अब क्या जबाब दे ? वह कुछ जबाब देना ही नहीं चाहता था। वह मौन होकर वकील साहब के ऊपर अपनी शक्ति का रोब जमाने लगा। वकील साहब भी उसके भाव को ताड़ गये। मगर लाचार, करें क्या ? मँगरू से उन्हें वोट की भीख तो लेनी ही थी। उन्होंने मँगरू के हाथ पर कुछ रुपये रखकर कहा—मँगरू यदि तुम मोरी पार्टी को वोट दिलवा दोगे तो मैं तुम्हें मालामाल कर दूँगा।

मंगरू ने रुपये अपनी जेब में रखते हुये जबाब दिया—वकील साहब, कल आइये। मैं अपनी बिरादरी के सभी आदमियों से आपको मिला दूंगा और उनसे आपके ही सामने सिफारिश भी कर दूंगा।

वकील साहब अपनी टोपी मंगरू के चरणों पर रखकर

चले गये । मंगरू चारपाई पर बैठकर बड़ी शान के साथ गाने लगा—

> मैं वोटर देवता कहाता ।
> बड़ों—बड़ों से पाँव पुजाता ॥
> अपनी दो तुम मुझे कमाई ।
> मेम्बर बन जावोगे भाई ॥

कई महीने के बाद। असाढ़ सावन का महीना था। रिम झिम वर्षा हो रही थी। रात में जब अँधेरा होता, तब ऐसा जान पड़ता, मानों अन्धकार ने चारो ओर से जाल तान दिया हो। सावन की, इसी भयानक अन्धकार वाली रात में एक दिन शहर में एक बड़ी भारी चोरी हो गई। चोरी न जाने किसने की? पर आफत आई, बेचारे नीच कौम के आदमियों पर। मंगरू का जवान लड़का जेठू भी इस आफत का शिकार हुआ। वह भी दस बीस आदमियों के साथ गिरफ्तार करके जेल में डाल दिया गया।

मंगरू अब क्या करे? उसका जवान बेटा कारागार में! उसका हृदय तड़प उठा। वह उदास होकर अपनी चारपाई पर सोच रहा था, क्या करूँ कैसे जेठू को छुड़ाऊँ? उसे छुड़ाने के लिये रुपया चाहिये! पर रुपया मेरे पास कहाँ! रुपये के नाम पर तो मेरे पास एक कौड़ी भी नहीं।

मंगरू गम्भीर होकर सोच रहा था। सहसा सेठ

धन्नामल उसे याद आ गये ! उसने म्युनिसपैलटी के चुनाव में धन्नामल की बड़ी सहायता की थी। धन्नामल ने कहा भी था, कि मंगरू मैं समय पड़ने पर तुम्हारी भरपूर सहायता करूंगा। बस फिर क्या ? मंगरू सेठ जी के द्वार पर जा पहुँचा।

द्वार पर सेठ जी की बग्घी सजी हुई तैयार थी। सेठ जी कहीं जाने वाले थे। सेठजी ज्यों ही तैयार होकर भीतर से निकले, त्यों हीं मंगरू ने आगे बढ़कर सेठ जी के पैर पकड़ लिये। सेठ जी ने देखा मंगरू चमार ! सेठ जी की आँखें क्रोध से लाल हो गईं। उन्होंने पैर से मंगरू को ठुकराते हुये कहा,— 'बदमाश तेरी इतनी हिम्मत बढ़ गई, कि तूने मेरे पैर पकड़ लिये। राम राम ! अब मुझे फिर से स्नान करना पड़ेगा।

सेठ जी मंगरू को झिड़ककर घर के अन्दर चले गये। मंगरू थोड़ी देर तक पड़ा पड़ा अपनी किस्मत पर आँसू बहाता रहा। फिर उसकी निराश आँखों के सामने वकील साहब दिखाई पड़े। वह वकील साहब के द्वार पर जा पहुँचा।

परन्तु वहाँ भी उसे वही फटकार, वहाँ भी उसे वही दुतकार ! वकील साहब ने भी उसे छूना पाप समझा, उससे बात करना अपनी इज्जत के खिलाफ समझा ! मंगरू जब चारों

ओर से निराश होकर लौटा, तब अपनी चारपाई पर बैठकर भौंरे की भाँति भनभनाने लगा। किन्तु उसके पहले और अब के गाने में अधिक अन्तर था। क्यों न हो, वह पहले वोटर देवता था न!

स्वर्ग के ठेकेदार

[सूर्यग्रहण का मेला। मुग़लसराय स्टेशन पर पंडों और यात्रियों की भीड़। दो तीन पंडे एक ट्रेन के एक डिब्बे के पास खड़े होकर आपस में बात चीत करते हैं।]

पहला पंडा—क्यों जी, देखते हो न! सामने डिब्बे के कोने में जो युवती बैठी है, वह कितनी सुन्दर है! उसका चेहरा क्या है, मानों चाँद का टुकड़ा। आँखों में भी तो एक

ग़ज़ब की लुनाई बरस रही है, ऐसी लुनाई तो अपने रामने कभी नहीं देखी !

दूसरा—तो आज सामने ही जी भरकर क्यों नहीं देख लेते ! तुम्हारे ही ऐसे पियासों की पियास बुझाने के लिये तो चन्द्र और सूर्यग्रहण का संयोग लगा करता है। यदि देखने ही से पेट न भरे, तो जादू की तरह उड़ंछू कर दो। मैं तो जब तुम्हारी तरह हट्टा कट्टा था, तब ऐसी औरतों को पलक मारते अपनी पलकों में छिपा लेता था। खुफिया विभाग वाले सर पटक कर मर जाते, किन्तु क्या मजाल, कि ज़ञ्जीर की खटक किसी के कानों में पहुँचे !

तीसरा—वाह, खूब रही ! किन्तु क्या तुम इन्हें अपने से कम समझते हो ! मेरा तो विश्वास यह है, कि ये तुमसे भी अधिक पहुँचे हुये फ़क़ीर हैं। ऐसा ध्यान लगाते हैं, कि बस सारा ब्रह्माण्ड आँखों के सामने दिखाई देने लगता है। तुम्हें यह सुनकर आश्चर्य होगा, कि ये अब तक कई दर्जन स्त्रियों को स्वर्ग के पवित्र द्वार तक पहुँचा आये हैं। यदि तुम्हें इन गई-गुजरी बातों पर विश्वास न हो, तो इस सोने की चिड़िया को ही प्रमाण के रूप में ले लो। क्यों जी, रामदत्त (पहले से) ठीक है न !!

पहला—हाँ हाँ, बिल्कुल ठीक है। देखो अभी ऐसा चमत्कार दिखाता हूँ कि इनका (तीसरे को लक्ष्य करके) बूढ़ा दिमाग़

भी सदा के लिये यह मान जायगा, कि नवजवानों को बूढ़ों से अधिक दिमाग़ हुआ करता है।

[तीनों आपसमें कुछ सलाह करके ट्रेन में घुस जाते हैं। और पहला पण्डा उस स्त्री से बात करता है।]

पण्डा—क्यों माई जी, आप कहाँ जायंगी ?

स्त्री—काशी, गंगा-स्नान के लिये।

पण्डा—आप कहाँ से आ रही हैं ? अकेले हैं या कोई और साथ में है।

स्त्री—मैं पटना के पास, एक गाँव से आ रही हूँ। साथ में और कौन होगा ? कोई है ही नहीं। इसी तरह तीर्थों में घूम-घूम कर अपने दिन बिता रही हूँ।

पण्डा—(मनमें प्रसन्न होकर) आप काशी में कहाँ रहेंगी ? बड़ी भीड़ होगी। सूर्यग्रहण है न ! यों ही हज़ारों आदमी काशी में रोज़ आया करते हैं। सूर्यग्रहण में तो सारा का सारा हिन्दुस्तान ही उलट पड़ेगा। सूर्य ग्रहण भी साधारण नहीं बड़ा उत्तम और बड़ा ही सुन्दर फल देने वाला है।

स्त्री—हाँ, यही सुनकर तो मैं भी आई हूँ। सोचा है, विश्वनाथ की कृपा से किसी तरह नहाना-धोना हो ही जायगा।

पण्डा—चिन्ता न कीजिये। हमलोग तो साथ में हैं ही। आप चलकर हमारे घर रहें। पण्डे ईश्वर के तुल्य होते हैं। आपको किसी तरह की कोई तकलीफ़ न होगी। बड़े मजे में

अहलवा कर शंकर जी का दर्शन करवा दूंगा। जाने लागियेगा, तो दो चार आने पैसे दान-दक्षिणा में दे दीजियेगा।

[स्त्री अपने मनमें कुछ सोचने लगती है।]

पण्डा—क्यों, क्या आपको कुछ सन्देह हो रहा है? यदि आप की न इच्छा हो तो न चलें! मेरे हजारों-लाखों यात्री हैं। एक न मिला, न मिला!! मैंने तो आपको अकेले देखकर यह समझा, कि आपको नहाने-धोने में तकलीफ होगी। मेले का दिन है। न जाने, कहाँ क्या हो? केवल इसीलिये मैंने आप से अपने साथ चलने के लिये कहा। यदि आपकी नहीं इच्छा है, तो न जाइये। हमलोग जा रहे हैं।

[तीनों पण्डे डिब्बे से नीचे उतरने लगते हैं।]

स्त्री—नहीं, नहीं, शक की कोई बात नहीं। मैं आप लोगों के साथ अवश्य चलूंगी। भला आप लोगों के प्रति सन्देह कैसा? दिन-रात विश्वनाथ जी की सेवा करते करते तो आपलोगों का मन अत्यन्त पवित्र हो गया है।

[तीनों पण्डे बड़े खुश होते हैं। गाड़ी काशी पहुँचती है। तीनों उस स्त्री को एक घोड़ागाड़ी पर बैठाकर एक ओर को चल देते हैं।]

दूसरा दृश्य।

काशी की एक अन्धेरी गली। गली में एक ऊंचा मकान! मकान के कमरे में एक स्त्री बैठी हुई है। रामदत्त (पहला पराडा) उसके सामने खड़ा है।

स्त्री—सचमुच तुम बड़े अच्छे आदमी हो। यदि तुममें बुद्धि होगी, तो तुम यह जान गये होगे, कि मैं काशी में गंगा स्नान करने के लिये नहीं आयी थी। तुम यह स्वयं सोच सकते हो कि एक युवती स्त्री, चाहे उसके कोई हो चाहे न हो, ऐसे मेले के लिये अकेले घर से नहीं निकल सकती।

सच बात तो यह है कि मैं अपने जीवन से ऊब चुकी थी। तुम अपने दिल में इस बात का तनिक भी ख्याल न करो, कि तुमने मुझे गङ्गा नहीं नहलवाया, विश्वनाथ जी का दर्शन नहीं करवाया। क्योंकि मैं इन सब बातों को एक प्रपञ्च समझता हूँ। अभी इस मकान में आये हुये मुझे पूरे सात घण्टे भी न हुये कि इतने ही से मैंने यह समझ लिया, कि अब मेरे दुखों का अन्त होगा! मगर......

पण्डा—मगर, क्या? कहो, कहो रुक क्यों गई? तुम तो यह जानती ही हो, कि हमलोग दुखियों का उद्धार किया करते हैं।

स्त्री—मेरा इस मकान में रहना ठीक नहीं। क्योंकि जब तुम-लोग मुझे यहाँ अकेली छोड़कर गये, तब अचानक इस सामने वाले मकान की खिड़की पर मुझे एक स्त्री दिखाई पड़ी। बदकिस्मती से वह मेरे मामा की लड़की निकली। उसने मुझे पहचान लिया। उसने कई बार मेरा नाम लेकर मुझे पुकारा पर मैंने कोई उत्तर न दिया। मुझे डर है, कि कदाचित्......

पण्डे के चेहरे पर हवाइयाँ उड़ने लगीं। इसी समय उसके दोनों साथी भी आ गये। तीनों ने एकान्त में सलाह मशवरा किया। रामदत्त फिर स्त्री के पास आकर बात करने लगा।

स्त्री—तुम चिन्ता न करो! यदि कुछ होगा भी तो मैं तुम्हारे खिलाफ न जाऊंगी। मगर तुम मेरी एक बात मानो।

तुमसे जितनी जल्दी हो सके, मुझे यहाँ से किसी दूसरे शहर में पहुँचा दो।

पण्डा—यही मैं भी कहना चाहता था। अच्छा ही हुआ, हमारे तुम्हारे विचार आपस में मिल गये। अच्छा अब चलने के लिये तैयार हो जाओ।

स्त्री—मगर मैं इस तरह न चलूंगी। मेले का दिन है, न जाने कौन देखले!

पण्डा—फिर?

स्त्री—मुझे एक बुरका खरीद कर लादो। मैं जब अपने चेहरे पर बुरका डाले रहूँगी, तब मुझे कोई पहचान न सकेगा।

[तीनों पण्डे बहुत खुश होते हैं। एक बुरका आता है। स्त्री बुरका ओढ़कर रात में बग्घी पर बैठती है। तीनों उसे लेकर स्टेशन जाते हैं। और फिर लाहौर के लिये रवाना हो जाते हैं।]

तीसरा दृश्य ।

[रात का समय । ट्रेन चल रही है। डिब्बे में बहुत से आदमी बैठे हैं। कानपुर स्टेशन करीब आ गया था।]

स्त्री—मैं अभी आ रही हूँ।

पण्डा—(उसी स्वर में)—क्यों, कहाँ जाना चाहती हो ?

स्त्री—पाखाने।

स्त्री पाखाने के कमरे में गई। कमरे में रेल की जञ्जीर दिखाई दे रही थी। उसने जञ्जीर खींच ली। गाड़ी कानपुर स्टेशन के कुछ फासले पर खड़ी हो गई। स्त्री फिर अपनी

जगह पर आकर बैठ गई। लोग गार्ड के साथ उसी डिब्बे की ओर चल पड़े। प्लेटफार्म से भी बहुत से आदमी झुक पड़े। पुलिस भी पहुँच गयी।

गार्ड—(उसी डिब्बे के सामने पहुँच कर) क्या इस डिब्बे में किसी ने जञ्जीर खींची है?

स्त्री—(बुरका फेंक कर)—हाँ मैंने खींची है। पहले स्वर्ग के इन तीनों ठेकेदारों को गिरफ्तार कर लीजिये, फिर बात कीजिये।

बात की बात में तीनों पण्डे गिरफ्तार हो गये। जब उस स्त्री ने स्वर्ग के इन ठेकेदारों के रहस्य का भण्डाफोड़ किया तब जिसे देखिये, उसी को यह कहते सुना, वाहरे स्वर्ग के ठेकेदार!
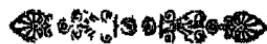
मड़भूँजे की महफ़िल

[एक लम्बा चौड़ा कमरा। पण्डित आनन्द शास्त्री कमरे में घूम घूमकर सोच रहे हैं। नौकर परेरू दरवाजे पर बैठकर ऊँघ रहा है]

पण्डित आनन्द शास्त्री—[मनही मन] न जाने आज कल क्या हो गया है ? साइत-लग्न के दिन आ गये; पर कहीं से

कोई जजमान आता ही नहीं। जान पड़ता है, मेरे सारे जजमानों पर अकाल पड़ गया है! इसीलिये तो न किसी के घर ब्याह पड़ता है, और न किसी के घर तिलक। न कोई सत्यनारायण की कथा के लिये बुलाता है, और न कोई भागवत के लिये। कौन जाने, शायद अपना ही ग्रहयोग खराब हो। अच्छा ज़रा पत्रा निकाल कर देखूँ तो!

[पत्रा निकाल कर देखते हैं, और अँगुलियों के पोरों पर गिनती बैठाते हैं।]

'अरे यह तो वृहस्पति का योग है। फिर कुछ न कुछ धन तो मिलना ही चाहिये। न ज्यादा, थोड़ा ही सही। वृहस्पति का योग तो कभी खाली नहीं जाता।'

[सहसा परेऊ का प्रवेश]

परेऊ—पण्डित जी, आप को एक आदमी बुला रहा है। दरवाजे पर खड़ा है।

पण्डित जी—आदमी बुला रहा है। क्या उसका पेट निकला है? क्या वह मोटर पर चढ़कर आया है? क्या उसने कोट पहना है? क्या उसके टाँगों में पतलून है? क्या वह चश्मा लगाये है? क्या उसने अपने पैरों में बूट पहना है? यानी मैं पूछ रहा हूँ, कि क्या वह कोई बड़ा आदमी है।

परेऊ—उसकी पूरी हुलिया तो मैं नहीं जानता पण्डित जी। किन्तु वह एक मिरजई पहने है। सिर पर तीन पैसे की एक

टोपी दिये है। चेहरा मानों उसका झौंसा हुआ है। उसकी मिरजई और टोपी भी बड़ी विचित्र है। ऐसा जान पड़ता है, मानों उसकी भाभी ने उसके ऊपर काला रङ्ग उड़ेल दिया हो!

पण्डित जी—अच्छा कोई हो! जाओ उसे ले आओ। जब आया है; तब कुछ न कुछ तो दे ही के जायगा। बृहस्पति का योग!

[परेऊ का प्रस्थान। पण्डित जी एक चौकी पर बैठ जाते हैं। बगल में एक पत्रा रख लेते हैं। सामने चटाई बिछा देते हैं। कुछ देर के बाद वह आदमी आता है, और पण्डित जी को प्रणाम कर चटाई पर बैठ जाता है।]

पण्डित जी—कहो भाई कैसे चले? रहते कहाँ हो? कहो सब खैरियत तो है?

आदमी—खैरियत न होती तो पण्डित जी आप के पास आता कैसे? यहाँ से एक कोस पर हरिहरपुर नाम का एक गाँव है। मैं उसी गाँव में रहता हूँ। मेरे लड़के की शादी पड़ी है। इसलिये आप के पास आया हूँ; कि आप चलकर शादी करा दें। बारात आज ही मनीपुर जायगी; और रात में शादी होगी।

पण्डित जी—क्यों भाई, हरिहरपुर में तो कई पण्डित हैं। क्या वे लोग तुम्हारे लड़के की शादी में न आयँगे?

आदमी—पण्डित जी, आप तो यह जानते ही हैं; कि हरि-

हरपुर के सब ब्राह्मण कोट और पतलून पहनने वाले हैं। मैं नहीं चाहता कि मैं उन्हें अपने लड़के की शादी में ले जाकर अपना धर्म भ्रष्ट करूँ। इसके अलावा उनमें और मुझमें कुछ ननातनी भी चल रही है। मैं जाति का भड़भूँजा हूँ। उस गाँव में मेरी एक भाड़ है। अभी खिचड़ी संक्रान्ति के अवसर पर एक भङ्गी भाड़ में दाना भुजाने आया। मैंने भूजने से इनकार कर दिया। उसने मेरी शिकायत गाँव के ब्राह्मण बाबुओं से कर दी! बस वे सब इसी पर खफा हो उठे! मुझसे कहने लगे, तुझे इसका दाना भूजना ही होगा! मगर मैं भी तो अपने धर्म का पक्का ठहरा! मैंने साफ इनकार कर दिया! आप ही बतलाइये पण्डित जी; क्या मैं उसका दाना भूजकर अपना धर्म नष्ट करता!

पण्डित जी—नहीं, नहीं। तुमने बहुत अच्छा किया। हरिहरपुर वाले धर्म-कर्म की बात क्या जानें? वे सब पूरे नास्तिक हैं। हरिहरपुर के जो सबसे बड़े पण्डित हैं; एक दिन मैंने उन्हें एक होटल में चाय पीते हुये देखा था! इसीलिये तो मैं हरिहरपुर वालों के यहाँ जल तक ग्रहण नहीं करता! भाई, जब तुम इतने धार्मिक हो; तब मैं जरूर तुम्हारे लड़के की शादी में चलूँगा! तुम निश्चिन्त रहो! मैं शाम को मनीपुर पहुँच जाऊँगा!

[आदमी का प्रस्थान! पण्डित जी ने परेरू को आवाज दी! परेरू का प्रवेश]

परेऊ—क्या है पण्डित जी ?

पण्डित जी—परेऊ ! आज तुम्हें भी मेरे साथ मनीपुर चलना होगा ! यह आदमी जो अभी आया था; उसके लड़के की शादी है !

[शादी का नाम लेकर पण्डित जी मुसकराये और उन्होंने परेऊ की ओर देखा ।]

परेऊ—किन्तु पण्डित जी आज तो मेरा एकादशी का व्रत है ।

पण्डित जी—पागल कहीं का । ऐसा मौका बारबार तो मिलता नहीं । देखता नहीं, दो बज गये । आधा दिन खतम हो गया । शास्त्र में लिखा है कि जब कोई जरूरी काम पड़ जाय तो एकादशी के आधे दिन के बाद अन्न खाया जा सकता है । इससे कदापि व्रत भङ्ग नहीं होता ।

[परेऊ चुप रहा]

पण्डित जी—परेऊ ! दो बज गये हैं । पाँच बजे मनीपुर पहुँचना है । दो कोस का लम्बा रास्ता है । जाओ जल्द घोड़ी सजाकर ले आओ ।

[परेऊ का प्रस्थान]

पण्डित जी—[मनही मन] आखिर बृहस्पति के योग का प्रभाव ही तो है । देखो, कैसा असामी है । धर्म को कितनी मुहब्बत की निगाह से देखता है । यह जरूर मेरे चरणों की खासी पूजा करेगा । विवाह में कम से कम न्यौछावर देगा, तो बीस रुपये से क्या कम देगा ? सुमंगली में तीन-चार रुपये वसूल

हो जायँगे। दान दक्षिणा में आठ दस रुपये हाथ लग जायँगे। इस तरह आज पचासों रुपये पर हाथ साफ होगा। वाहरे बृहस्पति महाराज! क्यों न हो? आप की माया सचमुच बड़ी अपरम्पार है।

[परेऊ का प्रवेश। उसने घोड़ी सजाकर दरवाजे पर खड़ी कर दी है। घोड़ी की पीठ पर पण्डित जी की झोली दोनों ओर लटक रही है।]

परेऊ—पण्डित जी, घोड़ी तैयार है। चलिये!

[पण्डित जी ने परेऊ की ओर देखा। फिर वे खड़ाऊँ पहन कर घोड़ी की पीठ पर जा बैठे। घोड़ी मनीपुर की ओर चल पड़ी। परेऊ भी पण्डित जी की घोड़ी के साथ साथ चलने लगा।]
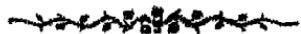
द्वितीय दृश्य ।

[मनीपुर का एक बाग। भड़भूँजों की महफिल लगी है। सभी एक रङ्ग के, एक ठाट के और एक साज के। पण्डित जी भी एक गाव-तकिये के सहारे महफिल में जाकर बैठ गये।

पण्डित जी—[उस आदमी से, जो उन्हें बुलाने गया था] भाई नौ बजे विवाह की साइत है। इसलिये लड़की वाले से कहो, कि वह जल्द सबको खिला पिला दे। क्योंकि मैं देखता हूँ। बारात में छोटे छोटे बच्चे भी हैं। बेचारे सो जायँगे तो उन्हें बड़ी तकलीफ होगी।

आदमी—हाँ पण्डित जी, यह तो आप ठीक कहते हैं। मैं भी इसी के इन्तजाम में हूँ। बारातियों को खिलाने पिलाने का प्रबन्ध हो रहा है। किन्तु आप .....।

पण्डित जी—मेरी कोई चिन्ता न करो। मुझे सब सामान मँगा दो, मैं भी आनन-फानन खाना तैयार कर लूँगा।

[बस फिर क्या ? आटा घी, तरकारी, लकड़ी वगैरह सब सामान आ गया। पण्डित जी की कड़ाही चढ़ गई। पण्डित जी ने विधि से पूड़ी कचौड़ी तरकारी बनाई! और वे नौ बजे तक खाना खाकर सब कामों से निश्चिन्त भी हो गये!

पण्डित जी—[महफिल में बैठकर] क्यों भाई, अब विवाह में क्या देर है ?

आदमी—कुछ नहीं पण्डित जी! सब साज समान हो चुका है। अब बुलावा आता ही होगा।

[सहसा परेऊ नौकर का महफिल में प्रवेश]

परेऊ—हाय, हाय, गजब हो गया! पण्डित जी!

पण्डित जी—[घबड़ा कर] क्या हुआ, क्या हुआ ? कुछ कहो भी ? क्या लड़की वाले के घर कुछ गड़बड़ हो गया ?

परेऊ—राम! राम!! नाम न लीजिये। गजब हो गया, गजब!

पण्डित जी—अरे भाई कुछ कहो भी तो ? आखिर उस गजब का कुछ नाम भी है!

परेऊ—पण्डित जी, धर्म की लुटिया डूब गई। यह भड़भूँजों

की महफ़िल नहीं; भंगियों की महफ़िल है !!

पण्डित जी—भङ्गियों की महफ़िल !

[इसी समय किसी ने चिल्ला कर कहा, पण्डित जी यह फागुन है]

लम्बी नाक के पुजारी

[काशी का गंगा तट । पं० सोमदत्त शास्त्री पलथी मार कर बैठे हुये हैं । उनकी तोंद नीचे की ओर लटक रही है । सिर पर लम्बी चुटिया इस तरह खड़ी है, मानों स्वर्ग के गोले का निशाना दाग रही हो । उनका दाहिना

हाथ नाक पर है । कन्धे पर रामनामी दुपट्टा ओढ़े हैं । दूसरी ओर से घाट पर एक स्त्री आती है । स्त्री सुन्दर है। स्वरूपवान है । वह पण्डित जी को देखकर अपने मन में सोचती है ।]

स्त्री—पण्डित जी की यह पूजा ! बेचारे इस जाड़े के दिन में न जाने कब से यहाँ बैठे हैं । ओढ़े भी तो कुछ नहीं हैं । केवल राम नामी दुपट्टा ! मगर उससे क्या हो सकता है ? यहाँ तो रूई का गरम सलूका पहनने पर भी दाँत कटकटा रहे हैं । जरूर कोई बड़े महात्मा हैं ।

[वह पण्डित जी को देखती है, और फिर स्नान करने के लिये चली जाती है । पण्डित जी भी उसे देखते हैं और अपने मन में सोचते हैं ।]

पण्डित जी—कितनी सुन्दर है ! जान पड़ता है, किसी बड़े रईस के घर की है । यदि यह किसी तरह मेरे चङ्गुल में आ जाय तो फिर एक साथ ही सारा का सारा झंझट रफा-दफा हो जाय ! जरा हिसाब लगाकर देखूँ तो इस समय मेरे भाग्य के ग्रह कैसे हैं ।

[पण्डित जी एक हाथ से नाक दबाये हैं । और दूसरे हाथ का अँगूठा उनकी अँगुलियों के पोरों पर घोड़े की भांति सरपट लगा रहा है]

पण्डित जी—[खुश होकर] अरे ग्रह तो बड़े अच्छे हैं !

इन ग्रहों का योग तो ऐसी घोषणा करता है, कि मुझे कई हज़ार रुपये मिलने चाहिये। ख़ैर, घबड़ाने की कोई बात नहीं! ग्रहों ने ईश्वर की मती को ठिकाने लगाकर मेरे पास रुपयों की चिड़िया भेजवा दी है। उसका जरूर मुझसे कुछ न कुछ काम होगा। वह जरूर मेरे पास आकर कुछ न कुछ कहेगी। क्योंकि वह मुझे जिस निगाह से देख रही थी, उसमें उसकी श्रद्धा और भक्ति नाच रही थी।

[पण्डित जी उस स्त्री की ओर देखते हैं। वह स्नान करके घाट से चल चुकी थी। वह भी पण्डित जी को देखती है। और पण्डित जी के पास पहुँच कर रुक जाती है।]

पण्डित जी—घबड़ाओ नहीं देवी, तुम्हारे मन की सारी इच्छायें पूर्ण हो जायँगी। बैठो हमलोगों से संकोच कैसा ? हमलोग तो धर्म के आचार्य हैं! आचार्य ईश्वर के तुल्य होते हैं।

[स्त्री के मन में पण्डित जी के प्रति एक विश्वास-सा पैदा हो जाता है। वह उनके पास बैठ जाती है।]

स्त्री—[सकुचाती हुई] पण्डित जी, आप तो मुझे बहुत बड़े महात्मा जान पड़ते हैं। सचमुच महात्माओं से किसी के मन की कोई बात छिपी नहीं रहती। मैं आप से सचमुच अपना कुछ दुखड़ा कहना चाहती हूँ; क्या आप उसे सुनने की

दया करेंगे ?

पण्डित जी—क्यों नहीं देवी ? कहो ! कहो !! यहाँ तो रोज ही ऐसे हजारों दुखी प्राणी आते हैं। रोज ही मैं सबकी सुनता हूँ, और सबका कल्याण भी करता हूँ।

स्त्री—मगर महाराज, यह रास्ता है। हजारो आदमी इधर से आते जाते हैं। अपने मनमें न जाने क्या कोई सोच ले ! ; अगर आप...... ।

पण्डित जी—अच्छा तो तुम्हारा यह मतलब है, कि मैं यहाँ से किसी दूसरी जगह चलूँ ! चलो, मैं दुखिया के लिये सब कुछ करने के लिये तैयार हूँ। संसार में दुखियों का दुःख दूर करना ही सबसे बड़ा धर्म है। मैं तो इसके सामने ईश्वर की पूजा-पाठ को भी भुला देता हूँ।

[पण्डित जी वहाँ से उठकर एकान्त में जाते हैं। स्त्री उनके पीछे पीछे जाती है। पण्डित जी एक जगह बैठ जाते हैं। स्त्री को भी बैठने का हुक्म देते हैं।]

पण्डित जी—कहो देवी, क्या कहना चाहती हो ? मैं देखता हूँ। तुम्हारे भाग्य बड़े अच्छे हैं। क्योंकि यदि भाग्य अच्छे न होते तो मुझसे तुम्हारी मुलाकात कभी नहीं हो सकती थी। हजारों राजा और रईस अपनी अपनी मोटरें लेकर मुझे दिन रात खोजते ही रहते हैं। किन्तु अपनी अपनी बदकिस्मती से मुझे कोई नहीं पाता !

स्त्री—[पण्डित जी की ओर देखकर] मैं आप से क्या बतलाऊँ महाराज ? आप तो त्रिलोक का हाल जानते हैं। फिर मेरे मनकी व्यथा आप से कैसे छिपी रह सकती है ? क्या बताऊँ महाराज, मुझे कोई सन्तान नहीं है। बहुत पूजा पाठ करके हार गई, पर मंशा न पूरी हुई, न पूरी हुई।

पण्डित जी—जरा तुम्हारा हाथ तो देखें देवी!

[पण्डित जी स्त्री का हाथ अपने हाथ में लेते हैं। और रेखाओं को गिन-गिनाकर कहते हैं।]

पण्डित जी—देवी घबड़ाओ नहीं, ईश्वर तुम्हारी अभिलाषा पूरी करेंगे। किन्तु क्या मैं तुमसे कुछ पूछ सकता हूँ, कि तुम कौन हो, और कहाँ रहती हो ?

स्त्री—[कुछ सोचकर] मैं खलिराइन हूँ महाराज! यहीं चौक के पास रहती हूँ।

पण्डित जी—तुम्हारे घर और कौन कौन से लोग हैं ? तुम्हारे पति क्या करते हैं ?

स्त्री—मेरा बहुत लम्बा चौड़ा परिवार है। मेरे यहाँ सोने चाँदी का व्यापार होता है। मेरे पति देव अपनी दूकान पर बैठते हैं!

[पण्डित जी के मुँह में पानी भर आता है। वे स्त्री की ओर ललचाई निगाह से देखकर कहते हैं।]

पण्डित जी—देवी ! सन्तान तो तुम्हारे भाग्य में लिखा है। किन्तु...... ।

स्त्री—किन्तु क्या महाराज ? साफ़-साफ कहिये।

पण्डित जी—तुम पर शनि का प्रकोप है। इसलिये शनि को शान्त करने के लिये पूजा करानी होगी। शनि की पूजा में तुम्हारे कई सौ रुपये खर्च होंगे। यदि तुम्हें मञ्जूर हो तो मैं तुम्हारे लिये कोशिश कर सकता हूँ।

स्त्री—भला आप की बात मुझे न मञ्जूर होगी महाराज ! मैं कल इसी समय अपने पति के साथ आपके पास आऊँगी। और आप जितना रुपया कहेंगे, आप को दे जाऊँगी। अच्छा अब मुझे आज्ञा दीजिये, देर होने से घर वाले नाराज होंगे।

पण्डित जी—[कुछ सोचकर] मगर देवी, आज पहला दिन है। इसलिये खाली न लौटना चाहिये। देवता की शान्ति के लिये कुछ न कुछ तुम्हें आज ही देना चाहिये।

स्त्री—मगर महाराज, मेरे पास तो इस समय तीन आने पैसे को छोड़कर और कुछ नहीं है।

पण्डित जी—कोई हर्ज नहीं। देवता थोड़े ही में प्रसन्न हो जायँगे ! तीन आने का हलवाई की दूकान से लड्डू ला दो। मैं देवता को चढ़ाकर तुम्हारी ओर से उनसे प्रार्थना कर दूँगा।

[स्त्री लड्डू लाकर पण्डित जी के सामने रख देती है।
वह पण्डित जी को प्रणाम करके अपने घर की राह लेती है।
पण्डित जी उसकी ओर इस तरह देखते हैं, जैसे कोई शिकारी
अपने शिकार की ओर देखता है।]

दूसरा दृश्य ।

[गंगा का तट । दूसरे दिन वही स्त्री फिर पण्डित जी के पास पहुँचती है ।]

पण्डित जी—[उसे देखकर] आओ, बैठो देवी । क्या तुम्हारे पतिदेव नहीं आये हैं ।

स्त्री—नहीं महाराज ! उन्होंने स्वयं मुझे आपके पास भेजा है । आज हमारे घर सत्यनारायण महाराज की कथा है । इसलिये यदि आप आज हमारे घर चलें, तो आप की बड़ी

कृपा हो। वहीं मेरे पति देव से भी आपकी भेंट हो जायगी। वे भी आप से मिलना चाहते हैं। यहां की शान्ति के लिये वहीं आप को रुपये भी मिल जायँगे!

पण्डित जी—क्यों नहीं देवी! जरूर चलूँगा! तुम्हारे यहाँ न चलूँगा, तो भला किसके यहाँ जाऊँगा। तुम्हारी भक्ति पर मैं इतना प्रसन्न हूँ, कि मैं कुछ कह नहीं सकता! तुम चाहे कुछ करो, या न करो, मगर मैं तुम्हारी अभिलाषा को पूरी करने की जरूर कोशिश करूँगा!

स्त्री—ऐसा न कहिये महाराज! मैं आप से कभी बाहर नहीं हो सकती। आप जो कहेंगे, वही करूँगी! मगर अब आप चलने की दया करें। क्योंकि लोग आप का इन्तजार करते होंगे।

[पण्डित जी उठकर चलते हैं। वह स्त्री उन्हें एक टूटे मकान में ले जाती है। पण्डित जी उस मकान को देखकर कहते हैं।]

पण्डित जी—देवी! क्या तुम्हारा यही मकान है?

स्त्री—नहीं महाराज! रहने का मकान तो मेरा दूसरा है। मेरे पति के पुरखे इस मकान में जमीन के अन्दर बहुत सी सम्पत्ति छोड़ गये हैं। आज उस सम्पत्ति के लिये जमीन की खुदाई शुरू होगी। इसीलिये कथा का आयोजन भी किया गया है। सबसे पहले कथा होगी, और फिर इसके बाद जमीन

की खुदाई होगी !!

पण्डित जी—तुम्हारे घर के लोग बड़े भक्त हैं देवी !

स्त्री—यह सब आप की कृपा है महाराज ! अभी कथा में कुछ देर है, क्या आप के लिये थोड़ा सा शर्बत बना लाऊँ ?]

पण्डित जी—जैसी तुम्हारी मर्जी ! मैं तुम्हारी इच्छा को टाल तो सकता नहीं।

[स्त्री जाती है और थोड़ी देर के बाद शर्बत बनाकर लाती है। पण्डित जी शर्बत पीते हैं और स्त्री की प्रशंसा करते हैं। दूसरी ओर से कुछ लड़के निकलते हैं।]

लड़के—कहिये पण्डित जी ! आये तो थे छब्बे बनने, लेकिन स्वयं दूबे बन गये ?

पण्डित जी—चुप रहो ! बकवाद न करो [स्त्री की ओर देखकर] देवी ! लड़कों का कान पकड़ कर कमरे से बाहर निकाल दो !

[स्त्री हँसकर भाग जाती है।]

लड़के—पण्डित जी ! आप जानते हैं, यह किसका घर है। मेहतर का, मेहतर का। और जिसपर लट्टू थे, वह है मेहतर की स्त्री !

पण्डित जी—मेहतर की स्त्री !

लड़के—हाँ ! हाँ !!

[परिडत्त जी राम राम करते हुये उठकर भागते हैं। और सीधे जाकर गङ्गा जी में डुबकी लगाते है। मगर लड़के परिडत जी का पीछा छोड़ते ही नहीं! वे सब परिडत्त जी के लिये ऐसे बन गये मानों मधु की मक्खी।]
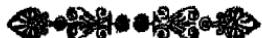
पंडित जी की शादी

[सन्ध्या का समय। पण्डित दीना नाथ शास्त्री कान पर जनेऊ चढ़ाकर पाखाने जा रहे हैं। उनके नौकर सुखलाल का प्रवेश।

सुखलाल—पण्डित जी, पण्डित जी, जरा रुक जाइये। अभी पाखाने न जाइये। केवल पाँच मिनट, पाँच मिनट।

पण्डित जी—तू बड़ा अज्ञान है, बे। देखता नहीं, मैं शौच

जाने के लिये तैयार हूँ। शास्त्रों में लिखा है, कि शौच जाने वाले आदमी से कभी रोक टोक न करनी चाहिये। रोक टोक करने से मनुष्य का ध्यान भङ्ग हो जाता है। और वह कब्ज जैसे भयानक रोग का शिकार हो जाता है।

[पण्डित जी पाखाने की ओर बढ़ते हैं]

सुखलाल—मगर पण्डित जी, आप को मेरी शपथ। पाखाने न जाइये। अगर पाखाने में घुस जाइयेगा तो मुझे मजबूर हो कर आपको पाखाने से बाहर निकाल देना पड़ेगा। क्योंकि मैं कभी यह नहीं देख सकता कि आप का बसता हुआ घर बजड़ जाये, हाथ में आई हुई चिड़िया निकल जाय।

[पण्डित जी सुखलाल की ओर देखकर खड़े हो जाते हैं। और सुखलाल यह कहता हुआ दौड़ कर उनके पास आता है।]

सुखलाल—सच कहता हूँ। पण्डित जी मेरी बात मानिये। आप को अब भी कब्जियत न होगी। कब्जियत को कौन कहे, अब आपके पेट में कभी गड़-गड़ाहट भी न होगी। दिन दूनी और रात चौगुनी खुराक बढ़ जायगी। रफ्तार ऐसी तेज हो जायगी, कि काबुल की बछेड़िया तक शरमा उठेंगी।

पण्डित जी—आखिर तू कहना क्या चाहता है? अज्ञानी देखता नहीं कि मेरे पेट में भूचाल आना चाहता है। ऐसी गड़-गड़ाहट सुनाई दे रही है, कि उससे यदि जमीन भी काँप उठती हो तो ताज्जुब नहीं।

सुखलाल—भूचाल ! पण्डित जी, भूचाल !! अरे बाप रे अब तो मैं यहाँ एक मिनट के लिये भी न रुक सकूँगा। आप का घर बसे या उजड़े, आपका आया हुआ देखुआर जिन्दा रहे या मर जाय, मुझसे कोई मतलब नहीं। यदि कहीं भूचाल में मेरी लखनी छप्पर के नीचे दबकर मर गई तब तो मेरे रंडुवा होने में तनिक भी सन्देह न रह जायगा। जान पड़ता है, आप मुझे भी अपने ही समान बनाना चाहते हैं। ना बाबा ! अब तो मैं यहाँ क्षण भर के लिये भी न रह सकूँगा।

[पण्डित जी खड़े खड़े जोर से डकार लेते हैं। सुखलाल "भूडोल भूडोल" कहता हुआ भागता है। पण्डित जी पाखाने जाना भूल जाते हैं और सुखलाल के पीछे दौड़ पड़ते हैं।

पण्डित जी—सुखलाल, सुखलाल जरा सुन लो। सच कहता हूँ भाई, अब मैं पाखाने न जाऊँगा। तुम्हें पुराणों की कसम, बतादो मेरा देखुआर कहाँ से आया है। वह कौन है ? किस शुभ स्थान में ठहरा है ? उसका नाम क्या है ? लड़की कैसी है ? उसके नाम का प्रथम अक्षर कौन सा है ? उसने संस्कृत की कितनी परीक्षायें पास की हैं ? वह अनुभवी है या सूर्यमुखी ?

[पण्डित जी दौड़ते हुये अपने घर के बाहर निकलते हैं, और द्वार पर एक आदमी से टकराकर गिर पड़ते हैं। वे बेहोश हो जाते हैं। सुखलाल दौड़कर वापस आता है, और पण्डित जी को होश में लाने की कोशिश करता है।]

आदमी—[सुखलाल से] क्या यही पण्डित दीनानाथ शास्त्री हैं? ठीक, इन्हें पहचानता हूँ। सूरत शकल तो अच्छी है। मगर वे इस समय दौड़े हुये कहाँ से आ रहे थे? गिर कर वे बेहोश क्यों हो गये?

सुखलाल—हमारे पण्डित जी सूरत शक्ल में पूरे इन्द्र हैं, इन्द्र!! बेचारे जहाँ जाते हैं, वहीं इन्हें आफत घेर लेती है। आप तो जानते ही हैं, दुनियाँ में सूरत शकल वाले आदमियों के लिये आफत ही आफत है। बेचारे पण्डित जी, अभी पाखाने में घुसे ही थे, कि एक सर्पिणी इनपर आशिक हो गई। पण्डित जी यदि भागते न, तो वह इनसे सच्ची मुहब्बत करके ही दम लेती।

पण्डित जी—[होश में आकर] सुखलाल कैसी लड़की है? क्या तूने देखी है! शास्त्रों की शपथ अब मैं पाखाने न जाऊँगा। मुझे बतादे वह चन्द्रमुखी है या सूर्यमुखी?

आदमी—क्यों जी, शास्त्री जी यह क्या बक रहे हैं? ये किस लड़की के बारे में तुमसे पूछ रहे हैं?

सुखलाल—मैंने आपको अभी बताया न, कि पण्डित जी के ऊपर एक सर्पिणी आशिक हो गई थी। जान पड़ता है, कि उसकी मुहब्बत का कुछ असर पण्डित जी के ऊपर पड़ गया है। इसी से ये बक झक रहे हैं। आप इस समय जाइये। कल दोपहर में आइयेगा, पण्डित जी से सब

बातें हो जायँगी। विश्वास रखिये, विवाह पक्का हो जायगा।

[वह आदमी जाता है। सुखलाल पण्डित जी को उठाकर चारपाई पर सुला देता है। पण्डित जी बहुत देर तक उसी प्रकार बक झक करते रहते हैं।]

२

[दोपहर का समय। पण्डित दीनानाथ शास्त्री सजधज कर चौकी पर बैठे हैं। उनके सामने एक दूसरी चौकी भी रक्खी है। इसी समय बारह का घण्टा बजता है। पण्डित जी की व्याकुलता बढ़ जाती है। वे सुखलाल को बुलाकर पूछते हैं।]

पण्डित जी—क्यों सुखलाल, बारह तो बज गये परन्तु अभी वह आदमी नहीं आया। कहीं नाराज तो नहीं हो गया! तुमसे उसने क्या कहा था? उसकी इच्छा मेरी शादी करने की है न! उसके रङ्ग ढङ्ग से तुम्हें क्या मालूम हो रहा था?

सुखलाल—घबड़ाइये नहीं पण्डित जी! वह अब आता ही होगा। वह सोलहो आने आप से शादी करना चाहता है। वह आपकी सूरत सकल पर लट्टू है। कहता था, ऐसा सुयोग्य वर कहीं ढूँढ़ने पर भी न मिलेगा।

पण्डित जी—ठीक कहता है। समझदार मालूम होता है। मगर सुखलाल, जरा पत्रा तो ले आ। देखूँ, आज कल ग्रहों का योग कैसा है? विवाह का योग पड़ता है या नहीं!

[सुखलाल पञ्चाङ्ग लाकर पण्डित जी को देता है। पण्डित जी कुछ देर तक पञ्चाङ्ग देखने के बाद कहते हैं।]

पण्डित जी—सुखलाल, ग्रह तो बड़े अच्छे हैं। बृहस्पति बारहवें घर में विराजमान हैं। दो चार दिन में ही विवाह हो जाना चाहिये।

सुखलाल—ठीक तो है पण्डित जी! देखिये, वह आपका कल वाला देखुआर भी आ गया। जरा मिरजई की सिकुड़न ठीक कर लीजिये। दुपट्टा ठीक से कन्धे पर रख लीजिये।

[पण्डित जी सावधान होकर बैठ जाते हैं। देखुआर का प्रवेश। पण्डित जी देखुआर का स्वागत करके उसे आदर पूर्वक बैठाते हैं।]

देखुआर—आप ही का नाम पण्डित दीनानाथ शास्त्री है?

पण्डित जी—जी हाँ! आप कहाँ से आ रहे हैं? मेरे योग्य कोई सेवा!

देखुआर—मैं इसी शहर के गड़बड़ टोले में रहता हूँ। विशुद्ध कान्यकुब्ज ब्राह्मण हूँ। नाम है, देवाचार्य। एक लड़की की शादी करनी है। इसी उद्देश्य से आप के पास आया हूँ। आशा है आप निराश न करेंगे!

पण्डित जी—[हँसकर] मगर मैंने तो ब्रह्मचर्य का महाव्रत लिया है। लोग कहते हैं, कलियुग में भीष्म और हनुमान ऐसे महावीर नहीं उत्पन्न हो सकते। इसीलिये मैंने ऐसी कठिन तपस्या करनी शुरू की है। मैं लोगों को दिखाये देना चाहता हूँ, कि ब्रह्मचर्य के पालन से कलियुग में भी भीष्म और हनुमान पैदा हो सकते हैं।

सुखलाल—बिलकुल ठीक! महावीर बनने के लिये पण्डित जी प्रति दिन तीन-तीन सेर की कचोड़ी और पूड़ियां खा जाते हैं। छोटे-छोटे जीवों की गिनती ही क्या? इनके भारी भरकम शरीर को देखकर बड़ी-बड़ी शेरनियाँ तक इनसे पनाह माँगती हैं। एक दिन ये रास्ते में चले जा रहे थे। दूसरी ओर से एक साइकिल आ रही थी। साइकिल पर मेम सवार थी। पण्डित जी के शरीर से साइकिल को ऐसा धक्का लगा, कि मेम साहब छः महीने तक अस्पताल में पड़ी रहीं।

देखुआर—इसमें क्या सन्देह? पण्डित जी की महावीरी तो इनके शरीर ही से टपक रही है। इनकी महावीरता पर तो मैं भी लट्टू हूँ। इसीलिये तो मैं चाहता हूँ, कि पण्डित जी

के साथ लड़की की शादी कर दूँ।

पण्डित जी—मगर मुझे दुःख है, कि मैं अभी अपनी शादी न करूँगा।

[देखुआर उठकर जाने लगता है। पण्डित जी कुछ परीशान होते हैं और कहते हैं।]

पण्डित जी—मैं देखता हूँ, आप नाराज हो गये। यदि आप की यही इच्छा है तो मैं आपकी इच्छानुसार शादी करने के लिये तैयार हूँ, किन्तु मेरी एक शर्त है।

देखुआर—कहिये, वह कौन सी शर्त है?

पण्डित जी—आप जानते हैं, कि बीस बिस्वा कान्यकुब्ज ब्राह्मण हूँ। मेरे यहाँ यदि आप विवाह करना चाहते हैं, तो आप को प्रचुर धन दहेज में देना पड़ेगा।

देखुआर—इसकी आप चिन्ता न करें। मैं आप को मालो माल कर दूँगा। किन्तु......

पण्डित जी—किन्तु क्या? साफ साफ कहिये।

देखुआर—मैं लड़की की शादी आज के तीसरे दिन कर देना चाहता हूँ। क्योंकि उसकी जन्म कुण्डली में लिखा हुआ है, कि इसकी शादी आठवें वर्ष की उम्र में हो जानी चाहिये। परसों उसका आठवाँ वर्ष पूरा हो जायगा।

पण्डित—जी मुझे मञ्जूर है। कल तिलक बरच्छा और परसों शादी है।

[देखुआर का प्रस्थान]

पण्डित जी—सुखलाल, यह चट मँगनी पट विवाह वाला मामला कैसे हल होगा ?

सुखलाल—कोई चिन्ता न कीजिये, सब हो जायगा।

पण्डित जी—तो अभी से तैयारी शुरू कर देनी चाहिये।

सुखलाल—बस, अब देर न होनी चाहिये।

[दोनों का प्रस्थान]

३

[गड़बड़ टोले में देवाचार्य का घर। घर सजा हुआ है। बारात आती है। शास्त्री जी दूल्हे के वेश में मण्डप में बैठते हैं। विवाह की विधियाँ पूरी की जाती हैं।]

पण्डित जी—[मनही मन] कैसी दुलहन है! घूँघट काढ़े हुये है। इसके घूँघट में इसका मुखचन्द्र छिपा हुआ है। अभी चुप है, मगर बोलने लगेगी, तब कोयल भी लज्जित हो उठेगी। इसके पिता का नाम देवाचार्य है। यह अवश्य पञ्चाङ्ग देखना जानती होगी।

[पुरोहित जी मन्त्र पढ़ते हैं। ज्यों ही उन्होंने वर-वधू के गठ बन्धन का आदेश दिया, त्यों ही एक ओर से बुधिया का प्रवेश। बुधिया को देखकर पण्डित जी घबड़ा उठते हैं।]

पण्डित जी—अरे, यह बुधिया यहाँ कहाँ से आ गई? इसे किसने मकान के अन्दर आने दिया? यह कान्यकुब्ज का घर है, या भंगियों की पञ्चायत। इसे निकाल दो यहाँ से!

बुधिया—पण्डित जी, खुद चली जा रही हूँ। आज दो रोज से मेरा नन्हकुआ गायब है। उसी को खोजते-खोजते मैं यहाँ चली आई। सोचा, शायद भीड़ भाड़ में भूलकर यहाँ आ गया हो!

दुलहिन—माँ, मैं यहाँ हूँ; दुलहिन बनी हूँ।

[पण्डित जी उसे देखते ही बेहोश हो जाते हैं, कुछ देर के बाद जब पण्डित जी होश में आते हैं, तब देखते हैं कि मकान खाली है और मकान की दीवारों पर जगह जगह लिखा हुआ है, पण्डित जी आज होली है।]

हाहाकार

अछूतों पर समाज का भयंकर अत्याचार—पुजारी का अमानुषिक व्यवहार—उसके पुत्र का अछूतों के प्रति प्रेम, अछूत कन्या से प्रेम का सम्बन्ध—दो मित्रों का विपरीत मार्ग, एक पुलिस का सुपरिन्टेण्डेण्ट है तो दूसरा देशभक्त। दोनों का अपने अपने कर्त्तव्य पर अटल रहना, उसके व्याख्यान पर जनता का उत्तेजित होना, सुपरिन्टेण्डेण्ट का मित्र पर गोली चलाने का हुक्म, इस विकट स्थिति में विचारों का द्वन्द्व युद्ध। अन्त में कर्त्तव्य की विजय, मित्र पर गोली चलाना, बीच में अछूत कन्या आकर गोली खाती है। अब उन दोनों मित्रों और अछूत कन्या के आगे का विवरण पढ़ने की जिज्ञासा हो तो आर्डर भेजकर तुरन्त मँगालें। पुस्तक देश सेवा, समाज सेवा, आदि विषयों का जीता जागता उपन्यास है। हाथ में लेने पर छोड़ने की इच्छा कभी न होगी। सचित्र पुस्तक का मूल्य १॥)